UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180879

UNIVERSAL
LIBRARY

चन्द्रशेखर

मूललेखक

उपन्याससम्राट्

बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४०

मूल्य १)

Printed and published by
K. Mittra at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad

चन्द्रशेखर

उपक्रमणिका

पहला परिच्छेद

बालक-बालिका

भागीरथी के किनारे आम के घने बगीचे में बैठा एक बालक भागीरथी का सान्ध्य जल-कल्लोल सुन रहा था। उसके पैरों तले नई दूब पर लेटी, एक छोटी बालिका चुपचाप उसका मुँह जोह रही थी। जोहती हुई, जोहती हुई, जोहती हुई, आकाश, नदी, पेड़ देखकर फिर वही मुँह जोहने लगी। बालक का नाम प्रताप था, बालिका का नाम शैवलिनी। शैवलिनी तब सात-आठ साल की बालिका थी—प्रताप किशोर।

सर पर शब्द की तरङ्ग से आकाशमण्डल को डुबा कर पपीहा पुकार गया। शैवलिनी उसकी नकल करके गङ्गा के किनारे के बगीचे को हिलाने लगी। गङ्गा की तर-तर आवाज़ उस व्यङ्ग-सङ्गीत को साथ ही मिला ले गई।

बालिका ने छोटे छोटे हाथों से कोमल जङ्गली फूल चुनकर माला गूँथकर बालक के गले में डाली; फिर उतारकर अपनी कबरी में पहनी, फिर निकाल कर बालक के गले में डाली। निश्चय नहीं हुआ कि कौन माला पहने। पास हृष्ट-पुष्ट एक गाय चर रही है

देखकर शैवलिनी विवादवाली माला उसकी सींगों में पहना आई, तब विवाद मिटा। इस तरह सदा होता था। कभी-कभी बालक माला के बदले घोंसले से चिड़िया का बच्चा उतार लाकर देता था, आमों के समय पके आम झोर देता था।

सन्ध्या के कोमल आकाश में तारे निकले, दोनों गिनने लगे। किसने पहले देखा ? कौन पहले निकला ? तुम कितने देख रहे हो ? चार ? मैं पाँच देख रही हूँ। वह एक, वह एक, वह एक, वह एक, वह एक। झूठ बात। शैवलिनी तीन से ज़्यादा नहीं देख रही।

नावें गिनो। कितनी नावे जा रही हैं, कहो ? सोलह ? शर्त बदो, अट्ठारह हैं। शैवलिनी को गिनना नहीं आता था। एक दफ़ा गिना, नौ हुईं। और एक दफा गिना, इक्कीस हुईं। इसके बाद गिनना छोड़कर दोनों एकाग्र चित्त से एक नाव की ओर निगाह जमाये रहे। नाव में कौन है—कहाँ जायँगे ? कहाँ से आये हैं ? डाँडों के पानी में कैसा सोने-सा चमक रहा है।

दूसरा परिच्छेद

कौन डूबा, कौन किनारे आया ?

इस तरह प्यार पैदा हुआ। प्रणय कहना हो कहिए, न कहना हो न कहिए। सोलह साल का नायक है, आठ साल की नायिका। बालक की तरह कोई प्यार करना नहीं जानता।

बचपन के प्यार पर शायद कोई शाप है। जिन्हें बचपन में प्यार किया है, उनमें से कितने आदमियों से जवानी में मुलाक़ात होती है ? कितने आदमी बचे रहते हैं ? कितने आदमी प्यार के

योग्य रह जाते हैं ? बुढ़ापे में बचपन के स्नेह की स्मृति-मात्र रहती है, और बाक़ी सब विलुप्त हो जाता है । परन्तु वह स्मृति कितनी मधुर है !

बालक मात्र ने किसी न किसी समय यह अनुभव किया है कि उस बालिका का मुखमण्डल बहुत ही मधुर है । उसकी आँखों मे समझ से परे कोई गुण है । खेल छोड़कर कितने दफ़े उसके मुँह की तरफ़ देखा है—रास्ते के किनारे आड़ में खड़े होकर कितने दफ़े उसे देखा है । कभी समझ नही सका, फिर भी प्यार किया है । इसके बाद वह मधुर मुँह—वह सरल चितवन काल के प्रवाह में बह गये हैं । उसके लिए संसार खोजकर देखता हूँ, केवल स्मृति है । बचपन के प्यार पर कोई शाप है ।

शैवलिनी मन ही मन जानती थी, प्रताप के साथ मेरा ब्याह होगा । प्रताप जानता था, ब्याह नही होगा, शैवलिनी प्रताप के गोत्र की लड़की है । सम्बन्ध दूर का है, लेकिन गोत्र की है । शैवलिनी की यह सोचने की पहली भूल है ।

शैवलिनी ग़रीब की लड़की है । कोई नही, सिर्फ़ माँ है । और कुछ नहीं, सिर्फ़ एक कुटिया है और शैवलिनी की रूपराशि । प्रताप भी ग़रीब घर का है ।

शैवलिनी बढ़ने लगी—सौन्दर्य की सोलहवी कला भरने लगी, परन्तु विवाह नहीं हुआ । विवाह में खर्च है—कौन खर्च करे ? उस जङ्गल में तलाश करके कौन उस रूपराशि को अमूल्य कहकर उठा ले आयेगा ?

धीरे-धीरे शैवलिनी की समझ बढ़ने लगी । वह समझी, प्रताप के बिना संसार में सुख नहीं । समझी, इस जन्म में प्रताप के पाने की सम्भावना नहीं ।

दोनों सलाह करने लगे । बहुत दिनों तक सलाह की । छिप छिप कर सलाह की कि कोई जान न पाये । सलाह हो जाने पर दोनों

गङ्गा नहाने गये। गङ्गा मे बहुत-से आदमी तैर रहे थे। प्रताप ने कहा, "आ, शैवलिनी, तैरें।" दोनों तैरने लगे। दोनों अच्छे तैराक थे, गाँव के लड़के उनका तैरने मे मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। वर्षाकाल था--गङ्गा का पानी किनारा छापे हुए--हिलता, झूमता, नाचता भगता जा रहा था। दोनों उस जलराशि को चीरकर, मथकर, उछालकर तैरते हुए चले। फेन और भँवर में दो सुन्दर नये बदन चाँदी की अँगूठी में जड़े दो रत्नों की तरह शोभा देने लगे।

तैरते हुए ये बहुत दूर गये, देखकर जो घाट में थे, वे पुकार कर लौटने के लिए कहने लगे। उन लोगों ने नहीं सुना--तैरते गये, फिर सबने पुकारा--तिरस्कार किया--गालियाँ दीं--दोनों में किसी ने नही सुना, तैरते गये। बहुत दूर जाकर प्रताप ने कहा, "शैवलिनी, यही हमारा ब्याह है।"

शैवलिनी ने कहा, "अब बस, यही।"

प्रताप डूबा।

शैवलिनी नही डूबी। उस वक़्त शैवलिनी डरी। सोचा, क्यों मरूँ, प्रताप मेरा कौन है? मुझे डर लगता है, मै जान नहीं दे सकूँगी। शैवलिनी नही डूबी, लौटी। तैर कर किनारे लौट आई।

तीसरा परिच्छेद

वर मिला

जहाँ प्रताप डूबा था, उसके पास ही एक डोंगी जा रही थी, आरोहियों मे से एक ने देखा--प्रताप डूबा। वह पानी में कूदा। आरोही चन्द्रशेखर शर्मा थे।

तैरकर चन्द्रशेखर ने प्रताप को पकड़ा और नाव पर चढ़ाया। उसे नाव पर चढ़ाकर किनारे नाव लगाई। प्रताप को साथ लेकर उसके घर छोड़ने गये।

प्रताप की मा ने नहीं छोड़ा, चन्द्रशेखर के पैरों पडकर उस दिन के लिए उनसे आतिथ्य स्वीकार कराया। चन्द्रशेखर के भीतर की बात कुछ नही मालूम कर सकी।

शैवलिनी ने प्रताप को फिर मुँह नही दिखाया। परन्तु चन्द्रशेखर ने उसे देखा। देखकर मुग्ध हुए।

चन्द्रशेखर तब खुद कुछ विपत्ति में थे। वे बत्तीस साल पार कर चुके थे। वे गृहस्थ थे, फिर भी संसार में पैर नही फँसाया था। अब तक शादी नही की। शादी करने पर ज्ञान के उपार्जन में विघ्न होता है, इसलिए उस तरफ से सोलहो आने खिचे थे। लेकिन इधर साल के कुछ ऊपर गुज़रा था, उनकी माता का देहान्त हो चुका था। अब शादी न करना ही ज्ञान के उपार्जन में विघ्न मालूम देने लगा था। पहले तो, अपने हाथ भोजन पकाना पड़ता है, इसमें काफ़ी वक़्त लग जाता है, पढ़ने-पढ़ाने में दिक़्क़त होती है; दूसरे, देव-सेवा है, घर मे शालग्राम है। इस सम्बन्ध के कार्य खुद को करने पड़ते हैं, इसमें वक़्त जाता है, देवता की पूजा अच्छी तरह नही हो पाती—गृहधर्म बाक़ायदा नही निभता—यहाँ तक कि सब दिन भोजन का सही सही इन्तज़ाम नहीं हो पाता। किताबें खो जाती हैं, ढूँढ़कर नही पाते। पाया हुआ धन कहाँ रखते हैं, किसे देते हैं याद नहीं रहता। खर्च नहीं है, फिर भी पूरा नहीं पडता। चन्द्रशेखर ने सोचा, ब्याह करने पर इन कुल बातों का सुभीता हो सकता है। लेकिन चन्द्रशेखर ने निश्चय किया, अगर ब्याह करूँगा, तो सुन्दरी से नहीं; क्योकि सुन्दरी से मन के मुग्ध होने की सम्भावना है, संसार-बन्धन में मुग्ध नहीं हुआ जायगा।

मन की जब ऐसी अवस्था थी, तब शैवलिनी को चन्द्रशेखर ने देखा। देखकर संयमी का व्रत टूट गया। सोच-विचार कर कुछ इधर-उधर करके, चन्द्रशेखर विवाह रचानेवाले बने और अन्त में खुद विवाह किया। सौन्दर्य के मोह से कौन नही मुग्ध होता ?

इस विवाह के आठ साल बाद यह कहानी शुरू होती है।

प्रथम खण्ड

पापीयसी

पहला परिच्छेद

दलनी बेगम

सूबे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के मालिक नव्वाब आली-जाह मीरक़ासिम खाँ मुङ्गेर के किले मे रहते है। क़िले के भीतर रङ्गमहल में एक जगह बड़ी शोभा है। रात का पहला पहर अभी नही बीता। रङ्गीन चित्रकारीवाले कमरे की फ़र्श पर मुलायम क़ालीन बिछा हुआ है। फुलेल से चाँदी का दीया जल रहा है। कीनख़ाब के तकिये से छोटा-सा सर रक्खे छोटे क़द की बालिका-जैसी युवती लेटी हुई गुलिस्ताँ पढ़ने की कोशिश कर रही है। युवती सत्रह साल की है, लेकिन बालिका-जैसी सुकुमार। गुलिस्ताँ पढ़ रही है, रह रह कर उठकर निगाह दौड़ाती हुई अपने मन ही मन कितनी बातें कहती है। कभी कहती है, "अभी भी नहीं आये क्यों ?" फिर कहती है, "क्यों आयेंगे ? हज़ार बाँदियों में मैं भी एक बाँदी ही हूँ। मेरे लिए इतनी दूर क्यो आयेंगे ?" बालिका फिर गुलिस्ताँ पढ़ने लगती है।

कुछ पढ़कर फिर कहा, "अच्छा नहीं लगता। अच्छी बात, न आयें, लेकिन मुझे याद करें तो मैं तो पहुँच सकती हूँ। लेकिन मेरी याद भी क्यों आयेगी ? हज़ार बाँदियों में एक ही तो हूँ।" फिर गुलिस्ताँ पढ़ने लगी, फिर किताब रख दी। कहा, "अच्छा,

खुदा क्यों ऐसा किये है ? एक क्यों एक दूसरे की बाट जोहे ? अगर खुदा की यही मर्जी है, तो जो जिसे पाती है, उसे ही क्यों नहीं चाहती ? मैं लता होकर शाल के लिए क्यो बढ़ रही हूँ ?" तब युवती किताब रखकर उठी । निर्दोष गढ़नवाले छोटे से सर पर लटकते हुए साँपों-से घने घुँघराले बाल हिले—ज़री की किनारी का खुशबू फैलानेवाला, सफ़ेद दुपट्टे का छोर हिला—उसके पैर उठाते, बदन के हिलते कमरे में रूप की तरङ्ग उठी । अथाह पानी में जैसे चञ्चलता होते ही तरङ्ग उठती है, वैसे तरङ्ग उठी ।

सुन्दरी ने एक छोटी-सी वीणा लेकर झङ्कार दी और धीरे धीरे अति मृदु स्वर से गीत शुरू किया—जैसे श्रोता से डरकर गा रही है । ऐसे समय पास के पहरेदार के सलामी देने की आवाज़ और कहारों के पैरों की आहट उसके कानों में पड़ी । बालिका चौंक कर उठी और व्यस्तभाव से दरवाज़े पर जाकर खडी हुई । देखा, नव्वाब साहब का तामजान है । नव्वाब मीरकासिम अली खाँ तामजान से उतरकर इस कमरे के भीतर आये ।

आसन ग्रहण करके नव्वाब ने पूछा, "दलनी बीबी, कौन-सा गाना गा रही थी ?" युवती का नाम शायद दौलतउन्निसा है, नव्वाब उस नाम को छोटा करके 'दलनी' कहते थे । शहर के लोग भी 'दलनी बेगम' या 'दलनी बीबी' कहते थे ।

दलनी लाज से सर झुकाये रही । उसके दुर्भाग्य से नव्वाब ने कहा, "जो गाना गा रही थी, गाओ, मैं सुनूँगा ।"

तब बड़ी दिक्कत पड़ी । वीणा का तार क़ाबू में नहीं रहा—किसी तरह सुर नही बाँध रहा था । वीणा छोड़कर दलनी ने बेला लिया । बेला भी बेसुरा बोलने लगा । नव्वाब ने कहा "ठीक है, तुम इसी से गाओ ।" इस पर दलनी को मालूम दिया कि नव्वाब ने सोचा है, दलनी को स्वर का ज्ञान नहीं हुआ । इसके बाद—इसके बाद, दलनी का मुँह भी नहीं खुला । दलनी ने मुँह खोलने की

कितनी कोशिश की, लेकिन किसी तरह मुँह नही खुला । मुँह खुलता खुलता नहीं खुला । मेघ से ढके दिन की स्थलकमलिनी की तरह मुँह खिलता हुआ भी जैसे नहीं खिल रहा । भीरु कवि के काव्य-कुसुम की तरह मुँह जैसे खिलता है खिलता है, फिर भी नहीं खिलता । मानिनी स्त्री के, गले में आये हुए प्रणय-सम्बोधन की तरह, खुलता है—खुलता है, फिर भी नही खुलता ।

तब दलनी एकाएक बेला छोड़कर बोली, "मै नही गाऊँगी ।"

ताज्जुब मे आकर नव्वाब ने पूछा, "क्यो ? क्या नाराज़ हो गईं ?"

द०—कलकत्ते में अँगरेज़ जो बाजा बजाकर गाना गाते हैं, एक वही मँगा दीजिए, तभी आपके सामने फिर गाऊँगी, नही तो अब नहीं गाऊँगी ।

मीरक़ासिम ने हँसकर कहा, "अगर उस रास्ते में काँटे नहीं होंगे तो ज़रूर मँगा दूँगा ।

द०—काँटे क्यों होंगे ?

दुखी होकर नव्वाब ने कहा, "शायद उन लोगों से छेड़ होगी । क्या वे बातें तुमने सुनी नहीं ।"

"सुनी है" कहकर दलनी चुप हो गई । मीरकासिम ने पूछा, "बीबी, अनमनी होकर क्या सोच रही हो ?"

दलनी ने कहा, "एक दिन आपने कहा था कि जो अँगरेज़ों से छेड़ करेगा, वह हारेगा, फिर क्यों आप उनसे छेड़ करते हैं ? मैं नादान खादिमा हूँ, ये बातें मेरी जुबान से नहीं निकलनी चाहिएँ; सिर्फ़ यह कि कहने का कुछ हक़ है । आप मुझ पर मेहरबान हैं, मुझसे प्यार करते हैं ।"

नव्वाब ने कहा, "यह सच है बेगम, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । तुम्हें जितना चाहता हूँ, मैंने कभी किसी औरत को उतना नहीं चाहा या चाहूँगा ऐसा नहीं सोचा ।"

दलनी की देह रोमाञ्चित हुई। वह बड़ी देर तक चुप रही—उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। आँसू पोंछकर उसने कहा, "अगर मालूम है कि अँगरेज़ों की मुख़ालफ़त का नतीजा हार है तो क्यों उनसे मुख़ालफ़त करते हैं?"

स्वर को मीठा करके मीरक़ासिम ने कहा, "मेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं। तुम मेरी ही हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ, मैं अच्छी तरह जानता हूँ, इस तकरार में मुझे सलतनत से हाथ धोना होगा, या जान गवाऊँगा। लेकिन लड़ क्यों रहा हूँ? अँगरेजों का जैसा बर्ताव है, उससे वही मालिक हैं, मैं नहीं। जिस सलतनत का मालिक मैं नहीं, उससे मुझे सरोकार? इतना ही नहीं; वे कहते हैं मालिक हम हैं, लेकिन रिआया पर ज़ुल्म तुम करो हमारी तरफ़ से। क्यों मैं ऐसा करूँ? अगर रिआया को फ़ायदा न पहुँचा सका, सलतनत की बागडोर अपने हाथ न रख सका तो वह सलतनत छोड़ देना बेहतर है, बिला वजह क्यों गुनहगार बनूँ? मैं सिराजउद्दौला नहीं, न मीरजाफ़र हूँ।"

दलनी ने मन ही मन बङ्गाल के अधीश्वर की बड़ी तारीफ़ की, कहा, "मेरे मालिक, आपने जो कुछ फ़र्माया, उस पर मैं क्या कहूँ? सिर्फ़ एक भीख माँगती हूँ, आप खुद लड़ाई में न जायँ।"

मीर क़ा०—क्या इस मामले में बङ्गाल के नव्वाब का यह फ़र्ज़ है कि औरत की सलाह ले? या किसी कमसिन का फ़र्ज़ है कि इस मामले में सलाह दे?

दलनी का चेहरा उतर गया। नाराज़ हुई। कहा, "बिना समझे हुए मुझसे गुस्ताखी हुई, हुज़ूर क़ुसूर मुआफ़ फ़र्मायें। औरत का दिल सीधे तौर से नहीं समझता, इसी लिए ये बातें अर्ज़ कीं। लेकिन एक भीख और माँगती हूँ।"

"क्या?"

"आप मुझे लड़ाई में ले चलें।"

"क्यों ? क्या तुम्हारा शमशीर चलाने का इरादा है ? कहो तो गुरगनखाँ को बरखास्त करके उसकी जगह तुम्हें क़ायम करूँ।"

दलनी का फिर रङ्ग उतर गया, बात ज़बान में ही रह गई। मीरक़ासिम ने तब प्यार से पूछा, "तुम्हारा चलने का इरादा क्यों?"

"आपके साथ रहूँगी, इसलिए।"

मीरक़ासिम ने मंज़ूर नहीं किया। किसी तरह भी नहीं माने।

तब ज़रा मुस्कुराकर दलनी ने कहा, "जहाँपनाह ! आप तो ज्योतिष जानते हैं, फ़र्मायें, मैं लड़ाई के वक्त कहाँ रहूँगी।"

मीरक़ासिम ने हँसकर कहा, "तो क़लम-दावात मँगवाओ।"

दलनी ने एक बाँदी को हुक्म दिया; वह सोने का क़लम और दावात ले आई।

मीरक़ासिम ने हिन्दुओं से ज्योतिष सीखी थी, शिक्षानुसार गिनकर देखा। कुछ देर बाद काग़ज़ दूर फेंक दिया और उदास होकर बैठ रहे। दलनी ने पूछा, "क्या देखा ?" मीरक़ासिम ने कहा, "जो देखा वह ताज्जुब में डाल देता है। तुम न सुनो !"

नव्वाब उसी वक़्त बाहर गये और मीर मुन्शी को बुलाकर हुक्म दिया, "मुर्शिदाबाद एक हिन्दू मुहर्रिर के नाम परवाना भेजो; मुर्शिदाबाद के पास वेदग्राम नाम का एक गाँव है, वहाँ चन्द्रशेखर नाम का एक पंडित ब्राह्मण रहता है, उसने हमें ज्योतिष सिखाई थी, उसे बुलाकर समझना है कि अगर अँगरेज़ों से फ़िलहाल लड़ाई हुई तो लड़ाई के वक़्त और लड़ाई के बाद दलनी बेगम कहाँ रहेंगी ?"

मीर मुन्शी ने वैसा ही किया। चन्द्रशेखर को बुलाने के लिए आदमी मुर्शिदाबाद भेजा।

दूसरा परिच्छेद

भीमा पुष्करिणी

भीमा नाम के बड़े-से तालाब के चारों ओर ताड़ों की घनी क़तारें हैं। डूबते हुए सूरज की सुनहली धूप तालाब के काले पानी पर पड़ रही है। काले पानी पर धूप के साथ ताड़ों की काली काली छायायें खिंची हुई हैं। एक घाट की बग़ल में चढ़ी लता के छोटे छोटे कुछ पेड़ लता-लता से सँटे हुए, पानी तक डालें फैलाये हुए, जलविहारिणी कुलकामिनियों को ढक रखते हैं। उसी आवृत स्वल्पान्धकार में शैवलिनी और सुन्दरी पीतल के घड़े लिये हुए पानी से खेल रही थी।

युवती से पानी की कौन-सी क्रीड़ा है, यह हम नहीं समझते; हम पानी नहीं। जो कभी रूप देखकर गलकर जल हुए हैं, वही कह सकेंगे। वे कह सकते हैं, किस तरह पानी घड़े की ताड़ना से तरङ्गें उठाता हुआ हाथों के अलङ्कारों की झङ्कार की ताल ताल पर, ताल ताल पर नाचता है। हृदय पर गुँथे कमलों की माला हिलाकर उसी की ताल पर नाचता है। तैरने के लिए कौतूहली छोटे बत्तखों को हिलाकर उन्हीं की ताल पर नाचता है। युवती को घेर घेर कर उसकी बाहों में, गले में, कन्धों में, हृदय में ताक-झाँक कर जलतरङ्गें उठाकर ताल ताल पर नाचता है। फिर युवती किस तरह घड़ा बहाकर, मृदु वायु के हाथों उसे सौपकर, चिबुक तक बदन पानी में डुबाकर, बिम्बाधर से जलस्पर्श करती है, पानी मुँह में लेती है, सूरज की तरफ़ कुल्ली करती है, पानी गिरते वक्त बिम्ब-बिम्ब मे सौ सूर्य धारण कर युवती को उपहार देता है। युवती के हाथ और पैरों के सञ्चालन से पानी फ़ौवारे की तरह उड़कर नाचता है, पानी के हिलोर से युवती का भी हृदय नाचता है। दोनो बराबर हैं। पानी चञ्चल है, इस संसार

में चञ्चलता पैदा करनेवालियों का हृदय भी चञ्चल है । पानी में दाग़ नही लगता, क्या युवती के हृदय में लगता है ?

तालाब के श्याम जल में सुनहली धूप मिलती हुई, देखते देखते क्रमशः सब श्याम हो गई । सिर्फ़ ताड़ों के सिरे सोने की पताका की तरह झलमलाने लगे ।

सुन्दरी ने कहा, "भई, शाम हो गई है, यहाँ अब और नही । चलो, घर चलें ।"

शैवलिनी—कोई नही है, भई, धीरे धीरे एक गाना गा न !

सु०—दुर, पाप ! घर चल !

शै०—घर न जाऊँगी सखी !

मदनमोहन आ रहे मेरे, अरी,
घर न जाऊँगी सखी !

सु०—मरे तू ! मदनमोहन तो घर में बैठे हैं, वहीं चलती क्यों नही ?

शै०—उनसे कहो जाकर, तुम्हारी मदनमोहिनी भीमा का जल शीतल देखकर डूब मरी है ।

सु०—चल, अब मज़ाक़ छोड़ । रात हुई, मैं अब ठहर नहीं सकती । और फिर आज क्षेमा की मा कह रही थी, इधर एक गोरा आया हुआ है ।

शै०—उससे हमें-तुम्हें क्या डर ?

सु०—अरी मुई, तू कहती भी क्या है ? निकल, नही तो मै चली ।

शै०—मैं नहीं निकलूँगी, तू जा ।

सुन्दरी नाराज़ होकर घड़े में पानी भरकर किनारे चढ़ी । फिर शैवलिनी की ओर फिर कर बोली, "क्यों री, क्या सही सही तू इस शाम को अकेली तालाब के किनारे रहेगी ?"

शैवलिनी ने कोई जवाब नहीं दिया । उँगली उठाकर दिखाया । जिधर के लिए इशारा था, सुन्दरी ने देखा, पुष्करिणी के दूसरे पार एक ताड़ के पेड़ के नीचे, सर्वनाश ! सुन्दरी एक बात न कह कर काँख से घड़ा ज़मीन पर डालकर ऊँची साँस लेकर भग गई । पीतल का घड़ा लुढ़कता-लुढ़कता भक-भक शब्द से पेट का पानी निकालता हुआ फिर तालाब के जल में कूदा ।

सुन्दरी ने ताड़ के नीचे एक अँगरेज़ देखा था ।

अँगरेज़ को देखकर शैवलिनी हिली-डुली नहीं, न पानी से निकली । केवल वक्ष तक पानी में डूबी हुई, भीगे वस्त्र से कवरी समेत मस्तक का अग्रभाग ढककर, खिली हुई कमलिनी की तरह जल में बैठी रही । मेघ में अचला चञ्चला हँसी—भीमा की उन श्याम तरङ्गों पर यह स्वर्ण-कमल खिला ।

सुन्दरी भग गई; कोई नहीं, देखकर अँगरेज़ धीरे धीरे ताड़ों की आड़-आड़ घाट के पास आया ।

अँगरेज़ देखने में कमसिन था । दाढ़ी थी मूछें नही थीं । बाल कुछ काले, आँखें भी अँगरेज़ों के लिए काली । पहनावा काफ़ी भड़कीला, चैन (Chain) और अँगूठी आदि अलङ्कारों की कुछ अधिकता थी ।

अँगरेज़ धीरे-धीरे घाट के पास पानी के नज़दीक आकर बोला, "I come again fair lady." (ख़ूबसूरत देवी, मैं फिर आया हूँ ।)

शैवलिनी ने कहा, "मैं यह ख़ाक कुछ नहीं समझती ।"

अँगरेज़—Oh—ay—that nasty gibberish—I must speak it I suppose (ओह हो:—वही बुरी बड़बड़—मैं ज़रूर बोल लूँगा मैं समझता हूँ) हम again आया है ।

शै०—यम के यहाँ का क्या यही रास्ता है ?

अँगरेज़—यम । John you mean ? हम जॉन नहीं, हम लारेन्स ।

शै०—अच्छी बात । एक अँगरेज़ी शब्द सीखा—लारेन्स अर्थात् बन्दर ।

उस शाम को लारेन्स फ़स्टर शैवलिनी से कुछ देशी गालियाँ खाकर अपनी जगह लौट गया । लारेन्स फ़स्टर तालाब के ऊँचे किनारे से उतर कर आम के पेड़ के नीचे से घोड़ा खोल, उस पर चढ़कर, टिबियट नदी के किनारे पहाड़ों की प्रतिध्वनि के साथ सुने गीत याद करता करता चला । एक एक दफ़ा याद आने लगा, "उस ठंढे मुल्क की बर्फ़-सी जिस मेरी फ़स्टर के प्रणय मे, बचपन में, मुग्ध हुआ था, वह अब स्वप्न की तरह है । क्या देश-भेद से रुचि-भेद होता है ? तुषारमयी मेरी क्या शिखारूपिणी गर्म देश की सुन्दरी से तुलनीया है ? कह नहीं सकता ।"

फ़स्टर के चले जाने पर, शैवलिनी धीरे-धीरे पानी का घड़ा भरकर, काँख में लेकर, वसन्त की हवा पर बादल जिस तरह, मन्द पद से घर लौटी । घड़ा यथास्थान रखकर शय्यागृह में पैठी।

वहाँ शैवलिनी के पति चन्द्रशेखर कम्बल पर बैठे हुए, रामनामी से कटि से जाँघों तक आवृत किये, मिट्टी के दीये के सामने पुराने काग़ज़ों में लिखी पोथी पढ़ रहे थे । हम जिस समय की बातें कर रहे हैं, उसके बाद सौ साल बीत चुके हैं ।

चन्द्रशेखर की उम्र प्रायः चालीस साल की है । उनका क़द लम्बा, उसी तरह तगड़े, भरे हुए । बड़ा सर, ललाट चौड़ा, उस पर चन्दन की रेखा । शैवलिनी घर में पैठते वक्त सोच रही थी, "जब वे पूछेंगे, क्यों इतनी रात हुई, तब क्या कहूँगी ?" परन्तु शैवलिनी घर के भीतर आई, पर चन्द्रशेखर ने कुछ नहीं कहा । तब वे ब्रह्मसूत्र के एक खास सूत्र के अर्थ-संग्रह करने में व्यस्त थे । शैवलिनी हँस उठी ।

तब चन्द्रशेखर ने आँख उठाकर देखा, पूछा, "आज इतने असमय बिजली क्यों ?"

शैवलिनी ने कहा, "मैं सोच रही हूँ, न जाने तुम मुझे कितना बकोगे !"

चन्द्र०—क्यों बकूँगा ?

शै०—तालाब से आते मुझे देर हुई, इसलिए।

चन्द्र०—हाँ, सही तो, अभी आईं क्या ? देर क्यों हुई ?

शै०—एक गोरा आया था। ननँद सुन्दरी तब किनारे थी। मुझे छोड़कर दौड़ती हुई भग आई। मैं पानी में थी, डर से किनारे नही चढ़ सकी। डर के मारे गले भर पानी में खड़ी रही। उसके जाने पर तब निकलकर आई।

अनमने हुए चन्द्रशेखर ने कहा, "अब न जाना।" यह कहकर फिर शाङ्कर भाष्य में मन लगाया।

रात बहुत गहरी हो गई। तब भी चन्द्रशेखर प्रमा, माया, स्फोट, अपौरुषेयत्व आदि तर्क में लगे रहे। शैवलिनी यथारीति पति का भोजन उनके पास रखकर, स्वयं भोजन आदि करके, पास की सेज पर पड़ी गहरी नींद में थी। इस विषय में चन्द्रशेखर की ऐसी ही आज्ञा थी। बहुत रात तक वे पढ़ते रहते थे, थोड़ी रात बीते भोजन करके लेट नही सकते थे।

एकाएक मकान पर से उल्लू की गम्भीर आवाज़ सुन पड़ी। तब, बहुत रात हुई समझकर चन्द्रशेखर ने किताबें बाँधीं। वे सब यथा स्थान रखकर आलस्य से खड़े हुए। खुले झरोखे के रास्ते चाँदनी से प्रफुल्ल प्रकृति की शोभा की तरफ़ निगाह गई। झरोखे के रास्ते आती हुई चाँदनी सोती सुन्दरी शैवलिनी के मुँह पर पड़ रही है। चन्द्रशेखर ने प्रफुल्ल चित्त से देखा, उनके गृह के सरोवर में चाँदनी में कमल खिला हुआ है। वे खड़े हुए, खड़े हुए, खड़े हुए बहुत देर तक प्रीति की खुली आँखों से शैवलिनी का अनिन्द्य सुन्दर मुखमण्डल देखने लगे। देखा, खिंचे धनुष के टुकड़े

जैसी गहरी काली भौहों के नीचे मुँदे कमल के कोरक जैसी आँखें दोनों मुँदी हुई हैं; उन प्रशस्त नयन-पल्लवों में सुकोमला समगामिनी रेखा देखी। देखा, छोटा कोमल करपल्लव निद्रावेश में कपोल पर आ पड़ा है—जैसे फूलो की राशि पर किसी ने फूलों की राशि ढाल दी है। मुखमण्डल पर हाथ के रहने के कारण सुकुमार रसपूर्ण ताम्बूल रागारुण होंठ कुछ भिन्न हो गये है, मोतियों-से दाँतो की कतारें कुछ कुछ देख पडती हैं। एक दफा जैसे कोई सुख-स्वप्न देखकर सोती शैवलिनी कुछ हसी—जैसे एक दफ़ा चाँदनी पर बिजली कौधी। फिर वह मुखमण्डल पहले की तरह सुप्ति से स्थिर हो गया। विलास की चञ्चलता से रहित, सुप्ति से स्थिर, बीस साल की युवती का प्रफुल्ल मुखमंडल देखकर चन्द्रशेखर की आँखों से आँसू बह चले।

सुषुप्ति में सुस्थिर शैवलिनी के मुखमंडल की सुन्दर कान्ति देखकर चन्द्रशेखर रोये। सोचा, "हाय! क्यो मैंने इससे ब्याह किया? यह फूल राजमुकुट पर शोभा देता। शास्त्रो की चर्चा में लगे हुए ब्राह्मण की कुटी में यह रत्न क्यों ले आया? ले आकर मै सुखी हुआ हूँ, सन्देह नही; परन्तु शैवलिनी का इसमें कौन-सा सुख? मेरी जो उम्र है, उससे मुझ पर शैवलिनी का अनुराग असम्भव है, अथवा मेरे प्रणय से उसके प्रणय की आकाङ्क्षा के मिटने की सम्भावना नही। विशेषतया, मैं तो सदा अपने ग्रन्थों मे ही उलझा रहता हूँ, शैवलिनी के सुख की कब सोचता हूँ? मेरे ग्रन्थों को उतार कर और रखकर ऐसी नवयुवती का क्या सुख है? मैं निरा आत्मसुखपरायण हूँ—इसी लिए इससे ब्याह करने की प्रवृत्ति हुई थी? इस समय मुझे क्या करना चाहिए? क्लेश से सञ्चित इस पुस्तक-राशि को पानी में डालकर क्या जन्म भर के लिए रमणी के मुखपद्म को सारभूत समझूँ? छिः छिः! ऐसा मुझसे नहीं होगा। तो क्या यह निरपराधिनी शैवलिनी मेरे पापों का

प्रायश्चित्त करेगी ? इस सुकुमार कुसुम को क्या अतृप्त यौवन के ताप में दग्ध करने के लिए ही मैंने वृक्ष से तोड़ा था ?

इस तरह का विचार करते करते चन्द्रशेखर भोजन करना भूल गये ।

तीसरा परिच्छेद

लारेन्स फ़स्टर

वेदग्राम के बहुत क़रीब पुरन्दरपुर नाम के गाँव में ईस्ट इंडिया कम्पनी की रेशम की एक छोटी कोठी थी । लारेन्स फ़स्टर वहाँ का फ़ैक्टर या कोठीवाल है । थोडी उम्र मे मेरी फ़स्टर के प्रेम से हताश होकर ईस्ट इंडिया कम्पनी की नौकरी स्वीकार करके बङ्गाल आये थे । आज-कल के अँगरेज़ों के, भारत आने पर, जैसे अनेक प्रकार के रोग पैदा होते हैं, उस समय बङ्गाल की हवा से अँगरेज़ों को अर्थापहरण रोग होता था । फ़स्टर थोड़े ही समय में उस रोग के शिकार हुए थे । इसलिए मेरी की प्रतिमा उनके मन से दूर हो गई थी । एक समय प्रयोजन से वे वेदग्राम गये थे । भीमा-पुष्करिणी के जल में प्रफुल्ल पद्मस्वरूपा शैवलिनी उनकी दृष्टि में पड़ी थी । शैवलिनी गोरा देखकर भग गई थी, फ़स्टर सोचते हुए कोठी लौटे थे । फ़स्टर ने सोच-सोचकर यह सिद्धान्त किया कि कञ्जी आँखों से काली आँखें अच्छी और भूरे बालों से काले बाल अच्छे । एकाएक उन्हें याद आया कि संसार-सागर में स्त्री नाव की तरह है—सबको वह आश्रय लेना चाहिए—जो अँगरेज़ इस देश में आकर पुरोहित को धोखा देकर बङ्गाली सुन्दरियों को इस संसार में सहायिका समझकर

ग्रहण करते हैं, वे बुरा नहीं करते । बहुत-सी बङ्गाली स्त्रियों ने धन-लोभ से अँगरेज़ों को भजा है--क्या शैवलिनी नही भजेगी ? फ़स्टर कारकुन को साथ लेकर फिर वेदग्राम आकर वन में छिप रहे । कारकुन ने शैवलिनी को देखा--उसका घर देख आया ।

बङ्गाली का हर लड़का 'जूजू' नाम से डरता है । शैवलिनी की वही दशा हुई । पहले पहल शैवलिनी उस समय की प्रथा के अनुसार फ़स्टर को देखकर ऊँची साँस लेकर भगती थी । बाद को किसी ने उससे कहा, "अँगरेज़ आदमी को पकड़ कर तत्काल उसे खा नहीं जाता--अँगरेज़ बड़ा अजूबा जन्तु है--एक दिन आँख खोलकर देखना ।" शैवलिनी ने आँख उठाकर देखा । देखा, अँगरेज उसे पकड़कर उसी वक्त भोजन नहीं कर गया । उसी समय से फ़स्टर को देखकर शैवलिनी भगती नहीं थी । क्रमशः उससे बात-चीत करने की भी हिम्मत की थी । यह भी पाठक जानते है ।

अशुभ मुहूर्त्त में शैवलिनी पृथ्वी में पैदा हुई थी । अशुभ मुहूर्त्त में चन्द्रशेखर ने उसका पाणिग्रहण किया था । शैवलिनी जो कुछ है, वह क्रमशः कहूँगा । परन्तु वह जो कुछ भी हो, फ़स्टर का प्रयत्न विफल हुआ ।

बाद को कलकत्ते से फ़स्टर के लिए यह आज्ञा हुई--"पुरन्दर-पुर की कोठी में दूसरा आदमी नियुक्त किया गया है, तुम जल्द कलकत्ता आओ ।" जो कोठी मे नियुक्त हुए थे, वे इस आज्ञा के साथ साथ आकर हाज़िर हुए । फ़स्टर को जल्द कलकत्ता रवाना होना पड़ा ।

शैवलिनी के रूप ने फ़स्टर के चित्त पर अधिकार कर लिया था । फ़स्टर ने देखा, शैवलिनी की आशा छोड़कर जाना पड़ रहा है । इस समय जो अँगरेज़ बङ्गाल में रह रहे थे, वे सिर्फ़ दो कामों में अक्षम थे । वे लोभ सँभालने में अक्षम थे और हार मान लेने में । वे कभी नहीं मानते थे कि यह

काम हम नही कर सके--निरस्त होना ही अच्छा है, और वे कभी नही मानते थे कि इस काम मे अधर्म है, इसलिए नही करना चाहिए । जिन्होंने पहले पहल भारतवर्ष मे ब्रिटेन के राज्य की स्थापना की, उनकी तरह शक्तिशाली और स्वेच्छाचारी मनुष्य-सम्प्रदाय भूमंडल मे कभी देखा नही गया ।

लारेन्स फस्टर इसी प्रकृति के आदमी है । उन्होने लोभ को रोका नही—बङ्गाल के अँगरेजों मे उस समय धर्म शब्द लुप्त हो गया था । उन्होने साध्य और असाध्य का विचार भी नही किया । मन ही मन कहा, "Now or never" (अभी या कभी नही;) ।

यह सोच कर जिस दिन कलकत्ता जाना चाहते थे, उसकी पहली रात, शाम के बाद, शिविका, कहार और कोठी के कुछ बरकन्दाज़ लेकर सशस्त्र, वेदग्राम की तरफ चले ।

उसी रात को वेदग्रामवासियो ने भयपूर्वक सुना कि चन्द्रशेखर के घर मे डाका पड़ रहा है । चन्द्रशेखर उस दिन घर मे नही थे, मुर्शिदाबाद से राजकर्मचारी का सादर भेजा निमन्त्रण प्राप्त कर वहाँ गये हुए थे अभी तक लौटे नही । चीत्कार, कोलाहल, बन्दूक़ की आवाज़े सुनकर बाहर निकलकर ग्रामवासियो ने देखा, चन्द्रशेखर के मकान मे डाका पड़ रहा है, बहुत-सी मशाले जल रही है । कोई आगे नही बढ़ा । दूर खड़े हुए उन लोगों ने देखा, मकान लूटकर डाकू एक एक निकले । ताज्जुब में आकर उन लोगों ने देखा कि कुछ कहार एक पालकी कन्धे पर लेकर घर से बाहर निकले । पालकी के दरवाज़े बन्द है--साथ पुरन्दरपुर की कोठी का साहब है । देखकर सब लोग भय से स्तब्ध होकर हटकर खड़े हुए ।

डाकुओं के चले जाने पर पड़ोसी घर के भीतर घुसे; देखा, चीज़-वस्तु बहुत ज़्यादा नही गई, अधिकांश बीच ही है । लेकिन शैवलिनी नही । किसी किसी ने कहा, "वह कही छिपी है, अभी आयेगी ।" पुरानों ने कहा, "अब नही आयेगी—आने पर भी चन्द्रशेखर अब उसे

घर में नही लेगा। जो पालकी देखी उसी पालकी में वह गई है।" जो राह देख रहे थे कि शैवलिनी फिर लौट आयेगी, वे खड़े खड़े अन्तर में बैठ गये, बैठे बैठे नीद मे ढुलने लगे, ढुलते ढुलते नाराज़ होकर उठकर चले गये। शैवलिनी नही आई।

सुन्दरी नाम को जिस युवती का हमने पहले परिचय दिया है, वह सब के अन्त में गई।

सुन्दरी चन्द्रशेखर की पड़ोसिन की लड़की है, रिश्ते मे बहन लगती है। शैवलिनी की सखी है। उसका उल्लेख आगे फिर आयेगा, इसलिए यहाँ यह परिचय दिया।

सुन्दरी बैठी बैठी, सुबह को घर गई, घर जाकर रोने लगी।

चौथा परिच्छेद

नाइन

फ्स्टर खुद पालकी के साथ दूर भागीरथी के किनारे तक आये। वहाँ नाव सजी तैयार थी। शैवलिनी को नाव पर चढ़ाया। नाव पर हिन्दू दास-दासियाँ और पहरेदार लगा दिये। इस समय फिर हिन्दू दासदासियाँ क्यो ?

फ़स्टर स्वयं दूसरी सवारी से कलकत्ता गये। उन्हें जल्द जाना होगा--बड़ा नाव से हवा के खिलाफ़ खेते खेते हफ़्ते में कलकत्ता जाना उनके लिए असम्भव है। शैवलिनी के लिए स्त्रियों के लायक़ नाव की सुव्यवस्था करके दूसरा सवारी से वे कलकत्ता गये। ऐसी शङ्का नही थी कि वे स्वयं शैवलिनी की नाव के साथ नही रहेंगे तो कोई नाव पर आक्रमण कर शैवलिनी को छीन ले जायगा। अँगरेज़ की नाव है सुनने पर कोई पास नही आयेगा। शैवलिनी की नाव मुङ्गेर ले जाने के लिए कह गये।

प्रभात की हवा से उठी छोटी छोटी तरङ्गों पर शैवलिनी की बड़ी नाव उत्तर की ओर चली। मृदु शब्द करनेवाली तरङ्गें कल-कल करती हुई नाव के नीचे टूटने लगीं। तुम लोग दूसरे शठ, धूर्त और प्रवंचक पर जितना विश्वास कर सको, करना, परन्तु प्रभात-समीर पर विश्वास न करना। प्रभात-समीर बड़ा मधुर है--चोर की तरह धीरे-धीरे आकर यहाँ पद्म, वहाँ जुही की माला, उस जगह खुशबू से भरी बकुल की शाखा को लेकर धीरे-धीरे क्रीड़ा करता है; किसी को सुगन्ध ला देता है, किसी की रात की अङ्ग-ग्लानि दूर करता है, किसी का चिन्तातप्त ललाट शीतल करता है, युवती की अलकें देखने पर उनमें एक फूँक मारकर भग जाता है। तुम नौकारोही--देख रहे हो, वह क्रीड़ा-शील मधुर प्रकृतिवाला प्रभात-समीर छोटी छोटी वीचियों से नदी को सजा रहा है; आकाश के दो-एक कुछ काले मेघों को हटाकर आकाश को साफ़ कर रहा है; किनारे के पेड़ों को धीरे-धीरे नचा रहा है; डूबकर नहाने मे निरत कामिनियो से कुछ मीठा मीठा रहस्य कर रहा है; नाव के नीचे पैठकर तुम्हारे कानों में मधुर-मधुर गीत गा रहा है। तुमने सोचा, समीर बड़ी धीर प्रकृति का है--बड़े गम्भीर स्वभाव का, बिना आडम्बर का, और सदा खुश रहनेवाला। संसार मे यदि सब ऐसे ही हों तो क्या न हो। दे नाव खोल दे। धूप चढ़ी--तुमने देखा कि तरङ्गों पर धूप झुलस रही है--तरङ्गें पहले से कुछ बड़ी बड़ी हो गई हैं--बड़ी बतखें उन पर नाचती हुई तैर रही है; देह साफ़ करती हुई अनमनी सुन्दरियों के घड़े उन पर स्थिर नही रह रहे, बहुत ही नाच रहे हैं; कभी कभी तरङ्गें स्पर्धा करके सुन्दरियों के कन्धो पर चढ़ रही हैं; और जो किनारे चढ़ रही हैं, उनके पैरों पर पछाड़ खाकर गिर रही हैं,--सिर धुन रही हैं;--शायद कह रही हैं--"देहि पद-पल्लव मुदारम्।" अन्त तक पैरों का कुछ महावर धोकर देह से

लगा रही हैं। क्रमशः देखोगे, हवा की आवाज़ कुछ कुछ बढ़ रही है, और वह जयदेव की कविता की तरह कानों मे घुली नही जा रही, अब वह भैरवी रागिनो में कानों के पास मधुर मधुर वीणा नही बजा रही। क्रमशः देखोगे, हवा की गर्जना बढ़ी—बड़ा हुङ्कारवाला समा है; तरङ्गें एकाएक फूलकर सर हिलाती पछाड़ खाकर गिरने लगी, अँधेरा हो गया। प्रतिकूल हवा नाव का रास्ता रोककर खड़ी हुई। नाव का सिरा पकड़ कर पानो में पटकने लगी—कभी मुँह फेर दिया—तुमने मतलब समझकर पवन-देव को प्रणाम कर नाव किनारे लगाई।

शैवलिनी की नाव की दशा ठीक ऐसी ही हुई। कुछ दिन चढ़ने पर हवा तेज़ हुई। बड़ी नाव प्रतिकूल हवा में नहीं बढ़ सकी; मल्लाहा ने भद्रहाटी के घाट में नाव लगाई।

कुछ देर बाद नाव के पास एक नाइन आई। नाइन सुहागिन थी; कम-चौड़ो, लाल किनारो का साड़ी पहने हुए—साड़ो में कच्ची ज़री का अँचला है—हाथ में महावर की डलिया। नाव पर बहुत-सी काली-काली दाढ़ियाँ देखकर नाइन ने घूँघट काढ़ लिया था। दाढ़ी के अधिकारी ताअज्जुब की निगाह से नाइन को देख रहे थे।

एक रेती पर शैवलिनी का भोजन पक रहा था—अभी भी हिन्दुआनी थी—एक ब्राह्मण भोजन पका रहा था। एक दिन में कही बीबी नहीं बना जाता। फस्टर जानते थे कि शैवलिनी अगर नही भगी—जान नही दी, तो ज़रूर वह एक दिन कुर्सी पर बैठकर टेबिल में यवन का पकाया खाना निहायत अच्छा कहकर खायेगो। अभी इतनी जल्दी क्या है ? अभी जल्दबाज़ी करने पर सब तरफ़ से काम बिगड़ेगा। यह सोचकर फस्टर ने नौकरों की सलाह के अनुसार शैवलिनी के साथ ब्राह्मण दिया था। ब्राह्मण खाना पका रहा था, पास एक दासी खड़ी हुई, काम बढ़ा दे रही

थी । नाइन उस दासी के पास गई । पूछा, "क्यों बहन तुम लोग कहाँ से आ रही हो ?"

दासी को गुस्सा लगा, क्योंकि वह अँगरेज़ से तनख्वाह पाती थी, कहा--"तुझे क्या है री औरत ? हम हिल्ली दिल्ली मक्का से आ रहे हैं।"

नाइन का चेहरा उतर गया । बोली, "कहती हूँ, नही, वैसी बात नहीं--हम नाई है--तुम्हारी नाव में अगर कोई औरत-लड़की हो, नाखून कटायें, महावर लगवायें, यही पूछने आई हूँ ।"

नौकरानी कुछ नर्म पड़ी । कहा, "अच्छा पूछकर आती हूँ ।" यह कहकर वह शैवलिनी से पूछने गई कि वे महावर लगवायेगी या नही। जिस लिए भी हो, शैवलिनी अनमनी हो रही थी, कहा, "महावर लगवाऊँगी ।" तब सिपाहियों की आज्ञा लेकर दासी ने नाइन को नाव के भीतर भेज दिया, खुद पहले की तरह रसोई के पास रही ।

नाइन ने शैवलिनी को देखकर कुछ और घूँघट काढ़ लिया और उसका एक पैर लेकर महावर रचने लगी । कुछ देर तक शैवलिनी ने नाइन को गौर से देखा । देखते देखते पूछा, "नाइन तुम्हारा मकान कहाँ है ?"

नाइन बोली नही । शैवलिनी ने फिर पूछा "नाइन तुम्हारा नाम क्या है ?"

फिर भी उत्तर नही मिला ।

"नाइन, तुम रो रही हो ?"

मधुर स्वर से नाइन ने कहा,

"नही ।"

"हाँ, रो रही हो" कहकर शैवलिनी ने नाइन का घूँघट खोल दिया । नाइन रो रही थी । घूँघट खुल जाने पर नाइन मुस्कुराई ।

शैवलिनी ने कहा, "मैंने आते ही पहचाना है। मेरे पास घूँघट ?—मौत हो तेरी। अच्छा, यहाँ तू कहाँ से आई ?"

नाइन और कोई नहीं—सुन्दरी है। आँसू पोंछ कर सुन्दरी ने कहा, "जल्द जाओ। मेरी यह साड़ी पहनो मैं छोड़ रही हूँ। यह महावर की डलिया लो। घूँघट काढ़कर नाव से चली जाओ।"

अनमनी होकर शैवलिनी ने पूछा, "तुम आईं किस तरह ?"

सुन्दरी—कहाँ से आई, किस तरह आई, यह सब हाल दिन मिला तो इसके बाद कहूँगी। तुम्हारा खोज में यहाँ आई हूँ। लोगों ने कहा, पालकी गङ्गा के रास्ते गई है। मैं भी सुबह को उठकर, किसी से कुछ न कहकर, पैदल गङ्गा के किनारे आई। लोगों ने कहा, बजरा उत्तर को गया है। बहुत चली पैरों में दर्द होने लगा। तब नाव किराये करके तुम्हारे पीछे पीछे आई। तुम्हारी बड़ी नाव है—चलती नहीं, मेरी नाव छोटी है, इसी लिए जल्द तुम्हें पकड़ लिया।"

शैवलिनी—अकेली किस तरह आई ?

सुन्दरी के मुँह में आया, "तू कलमुही साहब की पालकी पर चढ़कर आई किस तरह ?" परन्तु असमय समझकर यह बात नहीं कही। कहा, "अकेली नहीं आई, मेरे पति मेरे साथ हैं। अपनी डोंगी कुछ दूर लगाकर नाइन बनकर आई हूँ।"

शै०—इसके बाद ?

सु०—इसके बाद तुम मेरी यह साड़ी पहनो, यह महावर की डलिया लो, घूंघट काढ़कर नाव से उतर जाओ, कोई पहचान नहीं सकेगा। किनारे किनारे जाना। डोंगी पर मेरे पति हैं। ननदोई जानकर लजाना नहीं। डोंगी पर चढ़कर बैठ जाना। तुम्हारे जाने पर ही वे डोंगी खोलकर तुम्हें मकान ले जायँगे।

शैवलिनी ने देर तक सोचा, फिर पूछा, "इसके बाद तुम्हारी क्या दशा होगी ?"

सु०—मेरे लिए सोचना नहीं। बङ्गाल में ऐसा अँगरेज़ नहीं आया जो सुन्दरी देवी को नाव में भर रख सके। हम ब्राह्मण की लड़की, ब्राह्मण की स्त्री हैं। हमारा मन दृढ़ रहा तो संसार में हमें विपत्ति नहीं। तुम जाओ, जिस तरह भी होगा, रात के अन्दर-अन्दर मैं मकान पहुँचूँगी। विपत्तिभञ्जन मधुसूदन मेरे सहायक हैं। तुम अब देर न करो। तुम्हारे ननदोई जी का अभी भोजन नहीं हुआ, आज होगा या नहीं, यह भी नहीं कह सकती।

शै०—अच्छा, मैं जैसे गई। जाने पर वहाँ क्या मुझे घर में लेंगे ?

सु०—अहा हा ! क्यों नहीं लेंगे ? न लेना ऐसे मज़ाक़ है ?

शै०—देख, अँगरेज़ मुझे छीन लाया है—अब क्या मेरी जाति है ?

सुन्दरी ताज्जुब में आकर शैवलिनी के मुँह की तरफ देखने लगी। शैवलिनी पर मर्मभेदी तीव्र दृष्टि डालने लगी। दवा के छू जाने से नागिन जैसी गर्विता शैवलिनी ने सिर झुका लिया। सुन्दरी ने कुछ परुषभाव से पूछा, "सच बात कहेगी ?"

शै०—कहूँगी।

सु०—इस गङ्गा पर ?

शै०—कहूँगी, तुम्हारे पूछने की ज़रूरत नहीं, मैं खुद कह रही हूँ। साहब के साथ अब तक मेरी मुलाक़ात नहीं हुई। मुझे ग्रहण करने पर मेरे स्वामी धर्म से पतित नहीं होंगे।

सु०—तो तुम्हारे पति जो तुम्हें ग्रहण करेंगे, इसमें सन्देह न करना। वे धर्मात्मा हैं, अधर्म नहीं करेंगे। लेकिन अब व्यर्थ की बातों में समय न खोओ।

शैवलिनी कुछ देर चुप रही। कुछ रोई, आँख के आँसू पोंछ

कर कहा, "मैं जाऊँगी—मेरे स्वामी भी मुझे ग्रहण करेंगे, परन्तु मेरा कलङ्क क्या कभी दूर होगा ?"

सुन्दरी ने कोई जवाब नहीं दिया। शैवलिनी कहने लगी, इसके बाद मुहल्ले की छोटी छोटी लड़कियाँ मेरी तरफ उँगली उठाकर कहेंगी, वह देखो, उसे अँगरेज़ ले गया था। ईश्वर न करे अगर कभी मेरे लड़का होगा तो उसकी पसली में न्योता भेजने पर मेरे घर कौन खाने आयेगा ? यदि कभी लड़की हुई तो उससे कौन सुपात्र ब्राह्मण अपने लड़के का विवाह करेगा ? मैं अपने धर्म में हूँ, अब लौट जाने पर इस पर विश्वास भी कौन करेगा ? मैं घर लौट कर किस तरह मुँह दिखाऊँगी ?

सुन्दरी ने कहा, "भाग्य में जो कुछ था, वह हुआ—वह तो अब किसी तरह भी नहीं लौटेगा। कुछ क्लेश तो सदा ही भोगना होगा। फिर भी अपने घर में रहोगी।"

शै०—किस सुख से ? किस सुख की आशा में इतना कष्ट सहने के लिए घर लौट जाऊँगी ? न पिता, न माता, न बन्धु।

सु०—क्यों, पति ? यह नारीजन्म और किसके लिए ?

शै०—सब तो जानती हो—

सु०—जानती हूँ। जानती हूँ कि पृथ्वी पर जितनी पापिष्ठायें हैं, तुम्हारी तरह की पापिष्ठा कोई नहीं। जिस पति जैसा पति संसार में दुर्लभ है, उसकी तरफ़ तुम्हारा मन नहीं जाता, क्योंकि लड़के जैसे खिलौने का आदर करते हैं, वे स्त्री को वैसा आदर देना नहीं जानते; क्योंकि विधाता ने उन्हें राँगे के पात से मढ़कर तमाशा नहीं बनाया—आदमी बनाया है। वे धर्मात्मा हैं, पण्डित हैं; तुम पापिष्ठा हो—वे तुम्हारे मन को क्यों भायेंगे ? तुम अन्धे से ज़्यादा अन्धी हो, इसी लिए समझ नहीं रही कि तुम्हारे स्वामी तुम्हारा जैसा प्यार करते हैं, नारीजन्म में वैसा प्यार पाना दुर्लभ है—बड़े पुण्यफल से

ऐसे स्वामी से तुमने ऐसा प्यार पाया था। लेकिन जाये, वे सब बातें दूर हों—इस समय की ये बातें नही। वे न प्यार करें, फिर भी उनके चरणों की सेवा करके समय पार कर सकने में ही तुम्हारा जीवन सार्थक है। अब देर क्यों कर रही हो ? मुझे गुस्सा आ रहा है।

शै०—देखो, घर रहते मन में सोचती थी, यदि माता-पिता के कुल में किसी की खोज मिले तो उसके घर जाकर रहूँ। नही तो काशी जाकर भीख माँगकर खाऊँगी, या पानी मे डूबकर मरूँगी। इस समय मुङ्गेर जा रही हूँ। जाऊँ, देखूं, मुङ्गेर कैसा है। देखूँ, राजधानी में भीख मिलती है या नही। मरना हो तो न-हो मरूँगी। मौत तो हाथ में ही है। इस समय मेरे लिए मृत्यु के सिवा और उपाय क्या है ? परन्तु मरूँ या बचूँ, मैंने प्रतिज्ञा की है कि अब घर नही लौटूँगी। तुमने व्यर्थ मेरे लिए इतना क्लेश उठाया, लौट जाओ। मै नहीं जाऊँगी। सोचना, मै मर गई हूँ। मै मरूँगी, यह निश्चित रूप से समझना। तुम जाओ।

सुन्दरी ने फिर कुछ नही कहा। रुलाई रोककर उठी। कहा, "मुझे आशा है कि तुम जल्द मरोगी। देवताओं से देह, मन और वाणी से प्रार्थना करता हूँ, मरने के लिए तुम्हें साहस हो। मुङ्गेर पहुँचने से पहले ही जैसे तुम्हारी मृत्यु हो। आँधी से हो, तूफान से हो, नाव डूबने से हो, मुङ्गेर पहुँचने से पहले जैसे तुम्हारी मृत्यु हो।"

यह कहकर सुन्दरी नाव से निकलकर महावर की डलिया पानी में फेंककर, अपने पति के पास लौट गई।

पाँचवाँ परिच्छेद

चन्द्रशेखर का प्रत्यागमन

चन्द्रशेखर ने भविष्य को गणना करके देखा; देखकर राजकर्मचारी से कहा, "जनाब, आप नव्वाब साहब से कहिएगा, मैं ठीक ठीक गणना नहीं कर सका।"

राजकर्मचारी ने पूछा, "क्यों, पण्डित जी ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "सब बातें गणना में निश्चित नहीं होतीं। अगर होतीं तो आदमी सर्वज्ञ होता। खास तौर से ज्योतिष में मैं पारङ्गत नहीं।"

राजपुरुष ने कहा, "राजा को अप्रिय संवाद बुद्धिमान् व्यक्ति ज़ाहिर नहीं करते। जो कुछ भी हो, आपने जैसा कहा, मैं वैसा ही नव्वाब साहब से निवेदन करूँगा।"

चन्द्रशेखर विदा हुए। राजकर्मचारी को उन्हें पाथेय देने का साहस नहीं हुआ। चन्द्रशेखर ब्राह्मण हैं और पण्डित हैं, परन्तु पण्डित-ब्राह्मण नहीं—भिक्षा नहीं माँगते।—किसी से दान ग्रहण नहीं करते।

घर लौट आने पर, दूर से चन्द्रशेखर ने अपना घर देखा। देखते ही उनके मन में आह्लाद का संचार हुआ। चन्द्रशेखर तत्त्वज्ञ हैं, तत्त्वजिज्ञासु, अपने आप प्रश्न किया, "क्यों, विदेश से आते समय अपना घर देखकर हृदय में आह्लाद का संचार क्यों होता है ? क्या मुझे इतने दिनों तक भोजन और निद्रा में कष्ट हुआ है ? घर जाने पर विदेश से बढ़कर किस सुख से सुखी होंगा ? इस उम्र में मुझे कठिनतर मोह-बन्धन में पड़ना पड़ा है, सन्देह नहीं। उस घर में मेरी प्रेयसी पत्नी रहती है, इसी लिए मुझमें यह आह्लाद है ? यह ब्रह्माण्ड समस्त ब्रह्म है। अगर ऐसा है तो

किसी के लिए प्रेम का आधिक्य और किसी के लिए अश्रद्धा क्यों पैदा होती है ? सभी तो वही सच्चिदानन्द है । मेरी गठरी लेकर जो आ रहा है, उसकी तरफ़ घूमकर देखने की भी इच्छा क्यों नही हो रही ? और उस उत्फुल्ल-कमलानना का मुख देखने के लिए इतना कातर क्यों हो गया हूँ ? मैं भगवद्वाक्य पर अश्रद्धा नही करता परन्तु निश्चय है कि मैं घोर माया-जाल में फँसा जा रहा हूँ । इस मोह-जाल से निकलने की भी इच्छा नहीं होती । यदि अनन्त काल तक बचूँ तो अनन्त काल तक इस मोह में समाच्छन्न रहने की कामना करूँगा । कितनी देर में फिर शैवलिनी को देखूँगा ?"

एकाएक चन्द्रशेखर के मन मे अत्यन्त भयसंचार हुआ । यदि घर पहुँचकर शैवलिनी को न देखूँ ? क्यों नही ? यदि कोई बीमारी हुई हो ? बीमारी तो सबको होती है--अच्छी हो जायगी । चन्द्रशेखर ने सोचा, "बीमारी का बात मन में आते इतनी बेचैनी क्यो हो रही है ? किसे बीमारी नही होती ? लेकिन अगर कोई कठिन बीमारी हुई हो ?" चन्द्रशेखर जल्दी जल्दी चले । "अगर पीड़ा हुई होगी तो ईश्वर शैवलिनी को अच्छा करेंगे । मै स्वस्त्ययन करूँगा । अगर बीमारी अच्छी न हो ?" चन्द्रशेखर की आँखों में आँसू आ गये । सोचा, "भगवान् मेरा इस उम्र मे रत्न देकर क्या फिर मुझे वंचित करेंगे ? इसमें भी क्या विचित्रता ? मै क्या उनका इतना अनुगृहीत हूँ कि मेरे भाग्य में सुख छोड़कर दुःख का विधान वे करेंगे ही नही ? सम्भव, मेरे भाग्य मे घोरतर दुःख हो । यदि जाकर देखूँ, शैवलिनी नही ?--यदि जाकर सुनूँ, शैवलिनी ने कठिन बीमारी में प्राण छोड़ दिये हैं ? तो मै नही जिऊँगा ।" चन्द्रशेखर बहुत जल्दी जल्दी चले । गाँव में पहुँचकर देखा, पड़ोसी उनके मुँह की ओर बड़े गम्भीर भाव से देख रहे है । चन्द्रशेखर उस चितवन का अर्थ नही समझ सके । लड़के उन्हें देखकर चुपचाप हँसे । कोई कोई दूर रहकर उनके पीछे पीछे चले । वृद्ध उन्हें

देखकर पीठ फेरकर खड़े हुए। चन्द्रशेखर ताज्जुब में आये—डरे-अनमने हुए—किसी तरफ देखे बिना अपने दरवाज़े आकर खड़े हुए।

दरवाज़ा बन्द। बाहर से दरवाज़ा ढकेलने पर नौकर ने बाहर के मकान का द्वार खोल दिया। चन्द्रशेखर को देखकर नौकर रोने लगा। चन्द्रशेखर ने पूछा, "क्या हुआ है ?"

नौकर कोई उत्तर दिये बिना रोता हुआ चला गया।

चन्द्रशेखर ने मन में इष्टदेवता का स्मरण किया। देखा, आँगन बहारा नही गया—चण्डी-मण्डप में धूल जमी है। जगह जगह जली मशालें, जगह जगह कपाट टूटे हुए। चन्द्रशेखर अन्तःपुर मे पैठे। देखा, सब घरों के दरवाज़े बाहर से बन्द है। देखा, परिचारिका उन्हें देखकर हट गई। उन्होंने सुना, वह मकान से बाहर निकलकर फूट फूटकर रोने लगी। तब चन्द्रशेखर ने आँगन मे खड़े होकर विकृत स्वर से पुकारा—"शैवलिनी !"

किसी ने उत्तर नही दिया। चन्द्रशेखर का विकृत कण्ठस्वर सुनकर रोती हुई परिचारिका भी चुप हो गई।

चन्द्रशेखर ने फिर पुकारा, मकान में ध्वनि प्रतिध्वनित होने लगी। किसी ने उत्तर नही दिया।

उस समय शैवलिनी की चित्रित नाव पर गङ्गा के जल पर बहती मधुर हवा को हिलोरों पर अँगरेज़ों का लाल झंडा उड़ रहा था। माझी दादरा गा रहे थे।

चन्द्रशेखर ने सब कुछ सुना।

तब चन्द्रशेखर यत्नपूर्वक प्रतिष्ठित शालग्राम-शिला सुन्दरी के पिता के यहाँ रख आये। बासन-भाँडा, कपड़े आदि गृहस्थी का चीज़ें ग़रीब पड़ोसियों को बुलाकर उन्हें दे दी। शाम तक यह सब काम किया। शाम को अपने पढ़े हुए, पढ़े जानेवाले, शोणित के समान प्रिय ग्रन्थ, एक एक लाकर एकत्र किये। आँगन में एक एक

रखकर सज्जित किया। तह करके रखते हुए एक एक दफ़ा किसी-किसी किताब को खोला--फिर बिना पढ़े ही उसे बाँधा; आँगन में कुल किताबों की राशियाँ सज्जित की। सज्जित कर उनमें आग लगा दी।

आग जली। पुराण, इतिहास, काव्य, अलङ्कार, व्याकरण, क्रमशः सबमें आग लग गई। मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर आदि स्मृतियाँ; न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शन, कल्पसूत्र, आरण्यक उपनिषद् एक एक सब आग में जलने लगे। बड़े यत्न से संगृहीत, बहुकाल से अधीत, वह अमूल्य ग्रन्थों की राशि भस्म हो गई।

रात एक पहर होने तक ग्रन्थ-दाह समाप्त करके चन्द्रशेखर केवल एक उत्तरीय लेकर घर छोड़कर चले गये। कहाँ गये, किसी ने नहीं जाना--किसी ने पूछा भी नहीं।

द्वितीय खण्ड

पाप

पहला परिच्छेद

कुलसूम

"नहीं, चिड़िया नाचेगी नहीं, तू अब अपना क़िस्सा सुना।"

दलनी बेगम ने यह कहकर जो मोर नहीं नाचा, उसकी पूँछ पकड़कर खींची। हाथ का हीरे का कङ्कन खोलकर एक दूसरे मोर के गले में डाल दिया। एक बोलने पहाड़ी तोते की टोंट पर, सिर पर, गुलाब की पिचकारी मारी। पहाड़ी तोते ने बाँदी कहकर गाली दी। यह गाली दलनी ने खुद तोते को सिखलाई थी।

पास एक बाँदी चिड़ियों के नचाने की चेष्टा देख रही थी, उसी से दलनी ने कहा, "अब अपना किस्सा सुना।"

कुलसूम ने कहा, "क़िस्सा और क्या है? हथियारों से लदी दो किश्तियाँ घाट पर लगी हैं। एक अँगरेज़ लिये जा रहा था। दोनों किश्तियाँ रोक ली गई हैं। अली इब्राहीम खाँ कहते हैं, "नावें छोड़ दो, रोकने से बिना वजह, अँगरेज़ों से लड़ाई छिड़ेगी।" गुरगन खाँ कहते हैं, "लड़ाई छिड़ेगी तो छिड़े, किश्तियाँ नहीं छोड़ी जायँगी।"

द०—हथियार कहाँ जा रहे हैं?

कु०—अजीमाबाद* को कोठी में जा रहे हैं। लडाई छिड़ेगी तो पहले वही छिड़ेगी। वहाँ से एकाएक अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा जाता न रहे, इसलिए वहाँ हथियार भेजे जा रहे है। किले में यही खबर फैल रही है।

द०—लेकिन गुरगन खाँ रोकना क्यो चाहते है ?

कु०—कहते है, वहाँ इतने हथियार इकट्ठे होंगे तो लड़ाई मे फ़तह पाना दुश्वार होगा। दुश्मन को बढने नहीं देना चाहिए। अली इब्राहीम खाँ कहते है, हम लोग जो कुछ भी करें, अँगरेजों से लड़ाई में कभी फतह नही पायेंगे। इसलिए हमें लड़ाई लड़नी ही नही चाहिए। फिर नावें रोककर क्यों छेड़ पैदा करें ? नतीजा जो हुआ, वह सही है; अँगरेजों के हाथ बचाव नही होगा; कही नव्वाव सिराजउद्दौलावाला हाल न हो।

दलनी देर तक सोचती रही। बाद को कहा, "कुलसूम, तू एक काम हिम्मत का कर सकती है ?"

कु०—कौन-सा काम ? इलसा मछली खानी होगी या ठंढे पानी में नहाना होगा ?

द०—चल ! मज़ाक़ नही। मालूम कर लेने पर आलीजा तुझे और मुझे हाथी के पैर तले डलवा देगे।

कु०—मालूम करने पर न ? इतना इत्र-गुलाब, सोना-चाँदी चुराया, कहाँ, किसी को तो मालूम नही हुआ। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मर्दों की आँखें सिर्फ सिर की खूबसूरती बढ़ाती हैं, वे उनसे देख नहीं पाते। कहाँ, मर्द औरत की चालाकी मालूम कर लेता है, ऐसा तो नहीं देखा।

द०—चल। मै खोजा और खानसामा की बातें नही कर रही। आलीजा दूसरे मर्दों की तरह के नहीं। वे न मालूम कर सकें, ऐसा क्या है ?

*पटना

कु०—मैं नहीं छिपा सकती, ऐसा क्या है ? क्या करना होगा ?

द०—गुरगन खाँ के पास एक खत भेजना है ।

ताज्जुब में भरकर कुलसूम चुप रही । दलनी ने पूछा, "क्या कहती है? "

कु०—खत कौन लिखेगा ?

द०—मैं ।

कु०—अरे ! आप क्या ख़ब्तउलहवास हो गई हैं ?

द०—क़राब क़राब ।

दोनों चुपचाप बैठी रहीं । उन्हें चुप देखकर दोनों मोर अपनी अपनी लकड़ी पर चढ़े । तोता बिना वजह टें-टें करने लगा । दूसरी चिड़ियाँ दाना चुगने लगीं ।

कुछ देर बात कुलसूम बोली, "काम बहुत मामूली है, किसी खोजा को कुछ देने पर वह अभी खत दे आयेगा । लेकिन है यह बड़ा मुश्किल काम । नव्वाब साहब को मालूम हुआ तो हम दोनो की जान जायगी । कुछ हो, अपना काम आप समझिए, मैं बाँदी हूँ, खत दीजिए और कुछ नकद दीजिए ।"

कुछ देर बाद कुलसूम खत ले गई । इस खत के धागे म विधाता ने दलनी और शैवलिनी का अदृष्ट एक साथ पिरोया ।

दूसरा परिच्छेद

गुरगन खाँ

जिसके पास दलनी का पत्र गया, उसका नाम है गुरगन खाँ ।

इस समय बङ्गाल में जो राजपुरुष नियुक्त थे, उनमें गुरगन खाँ एक सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट थे । वे जाति में अरमनी थे, उनकी

जन्मभूमि इस्फहान थी। कहा जाता है कि वे पहले कपड़े के व्यापारी थे। परन्तु असाधारण गुणवाले और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। राजकार्य मे नियुक्त होकर वे थोड़े ही समय में प्रधान सेनापति के पद पर पहुँचे। सिर्फ इतना ही नही, प्रधान सेनापति के पद पर पहुँचकर उन्होंने नई गोलन्दाज़ सेना तैयार की। योरप की प्रथा के अनुसार उस सेना को सुशिक्षित और सुसज्जित किया। तोप और बन्दूकें जो तैयार कराईं वे योरप की तोप-बन्दूकों से बढ़कर होने लगी। उनकी गोलन्दाज सेना सब तरह से अँगरेजों के गोलन्दाजों के मुकाबले की हो गई। मीरकासिम को ऐसा भरोसा था कि वे गुरगन खाँ की सहायता से अँगरेज़ों को परास्त कर सकेंगे। गुरगन खाँ का आधिपत्य भी इसके अनुरूप हो गया; उनके परामर्श के बिना मीरकासिम कोई काम नही करते थे। उनके परामर्श के विरुद्ध कोई कुछ कहता था तो मीरकासिम सुनते नही थे। फलतः गुरगन खाँ एक छोटे नव्वाब हो गये। इसलिए मुसलमान अफसर नाखुश रहने लगे।

रात का दूसरा पहर है, परन्तु गुरगन खाँ अभी लेटे नही। अकेले दिये के उजाले मे कुछ चिट्ठियाँ पढ़ रहे थे। वे चिट्ठियाँ कलकत्ते के कुछ अरमनियो की थी। खत पढ़ कर गुरगन खाँ ने नौकर को बुलाया। चोबदार आकर खड़ा हुआ। गुरगन खाँ ने पूछा, "कुल दरवाज़े खुले हुए है ?"

नौकर ने कहा, "जी, जनाब"

गुर०--अगर कोई इस वक़्त मेरे पास आये तो कोई उसे रोके नही या पूछे नही कि तुम कौन हो। क्या यह बात तुमने समझा दी है ?

नौकर ने कहा, "हुक्म तामील किया जा चुका है।"

गुर०--अच्छा, तुम अलग अलग रहो।

फिर गुरगन खाँ ने पत्रों को बाँधकर यथास्थान छिपाकर रख

दिया। मन ही मन कहने लगे, "अब किस रास्ते जाऊँ? यह हिन्दोस्तान इस वक़्त समुन्दर के मानिन्द है। जो जितनी डुबकियाँ लगा सकेगा, वह उतने मोती पायेगा। किनारे बैठकर लहरे गिनने से क्या होगा? देखो, मै गज से नापकर कपड़ा बेचता था, इस वक़्त मेरे डर से हिन्दोस्तान थर्राता है।

मेरे ही हाथ बङ्गाल की बागडोर है। मेरे हाथ बङ्गाल की बागडोर है? बागडोर किसके हाथ है?—अँगरेज व्यापारियों के हाथ! मीर-कासिम उनका गुलाम है। मै मीरकासिम का गुलाम हूँ। मै मालिको के गुलाम का गुलाम हूँ। बड़ा ऊँचा ओहदा है। मै खुद बङ्गाल का मालिक क्यो न बन जाऊँ? मेरी तोपों के मुकाबले किसके पैर जम सकते है? अँगरेजों के? एक दफ़ा आवे तो मालूम हो। लेकिन अँगरेजों को इस मुल्क से दूर किये बगैर मै मालिक नही बन सकूँगा। मैं बङ्गाल का शाह बनना चाहता हूँ—मीरकासिम की मुझे परवा नही। जिस दिन चाहूँगा, उसी दिन उसे मसनद से घसीट कर अलग कर दूँगा। वह सिर्फ़ मेरे लिए तख़्त पर चढने की सीढ़ी है। मै छत पर आ चुका हूँ, नसेनी गिरा दे सकता हूँ; लेकिन दोजख़ के कीड़े अँगरेज़ राह के काँटे है। वे मुझे मुट्ठी मे करना चाहते है—मै उन्हें मुट्ठी मे करना चाहता हूँ। वे मुट्ठी मे नहीं आयेगे, इसलिए मै उन्हें खेदूँगा। अभी मीर-क़ासिम मसनद पर रहे, उसका मददगार होकर बङ्गाल से अँगरेज़ों का नामोनिशान मिटा दूँगा। इसी लिए कोशिश करके लड़ाई की जड़ जमा रहा हूँ। बाद को मीरकासिम को बिदा करूँगा। यही रास्ता अच्छा है। लेकिन आज एकाएक यह ख़त क्यों मिला? इस लड़की ने ऐसे हिम्मत के काम में क्यो पैर बढ़ाया?"

कहते कहते जिसकी बात सोच रहे थे, वह आकर सामने खड़ी हुई। एक दूसरे आसन पर गुरगन खाँ ने उसे बैठाला। वह दलनी बेगम है।

के साथ नहीं रहता । एक शौहर के न रहने पर दूसरा शौहर हो सकता है । मुझे यकीन है, तुम एक रोज हिन्दोस्तान की दूसरी नूरजहाँ होगी ।"

गुस्से से काँपती हुई दलनी उठकर खड़ी हुई । निकलते हुए आँसू रोककर, आँखें फाड़कर, रोती हुई कहने लगी "तुम जहन्नुम जाओ । बड़ी बुरी घड़ी मैं तुम्हारी बहन होकर पैदा हुई थी—बड़ी बुरी घड़ी मैंने तुम्हारी मदद के लिए कौल किया था । औरत के मोहब्बत रहम और फर्ज़ रहता है, यह तुम्हें नहीं मालूम । तुम अगर इस लड़ाई की पेशबन्दी से हाथ खींचोगे, तो अच्छा है; नहीं तो आज से अपने साथ मेरा कोई रिश्ता न समझना । कोई रिश्ता क्यों नहीं ? आज से तुम्हारा मेरा दुश्मन का रिश्ता है । मैं समझूँगी तुमसे मेरी सख्त दुश्मनी है । इस महलसरा में मैं तुम्हारे एक बड़े दुश्मन की तरह हूँ ।"

यह कहकर दलनी बेगम उस मकान से तेजी से निकल गईं ।

दलनी के निकल जाने पर गुरगन खाँ सोचने लगे । इस नतीजे पर पहुँचे कि दलनी अब उनकी नहीं, मीरक़ासिम की हो चुकी है । भाई कहकर उनसे मोहब्बत करे तो कर सकती है, लेकिन मीर-कासिम के लिए उसके दिल में मोहब्बत ज्यादा है । जब भाई को शौहर की राह का काँटा समझेगी तब शौहर की भलाई के लिए वह काँटा निकालते देर नहीं करेगी । इसलिए अब उसे क़िले के भीतर घुसने नहीं देना चाहिए । गुरगन खाँ ने नौकर को आवाज दी ।

एक हथियारबन्द सिपाही हाज़िर हुआ । उससे गुरगन खाँ ने हुक्म भेजा, दलनी को पहरेवाले किले के भीतर न जाने दें ।

घुड़सवार दूत क़िले के दरवाज़े पर पहले पहुँचा । यथासमय किले के द्वार पर पहुँचकर दलनी ने सुना, उनका प्रवेश निषिद्ध हो गया है ।

सुनकर दलनी कटी लता की तरह ज़मीन पर वहीं बैठ गई। आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कहा, "भाई ने मेरे खड़े होने की जगह भी नहीं रक्खी ?"

कुलसूम ने कहा, "लौटकर सिपहसालार के यहाँ चलो।"

दलनी ने कहा, "तुम जाओ। मेरे लिए गङ्गा की लहरों में जगह होगी।"

उस अँधेरी रात को आम सड़क पर खड़ी हुई दलनी रोने लगी। सर पर तारे चमक रहे थे—पेड़ों से खिले फूलों की खुशबू आ रही थी—धीमी हवा के झोंकों से अँधेरे में ढके पत्ते मुरमुरा रहे थे। दलनी ने रोकर कहा, "कुलसूम !"

तीसरा परिच्छेद

दलनी का क्या हुआ ?

एकमात्र परिचारिका के साथ रात के समय राजमहिषी राजपथ पर खड़ी हुई रोने लगी। कुलसूम ने पूछा, "अब क्या कीजिएगा ?"

दलनी ने आँखें पोंछीं, कहा, "आओ इस पेड़ के नीचे खड़े हों, सुबह हो।"

कु०—यहाँ सुबह होने पर हम पकड़ में आ जायँगे।

द०—इसके लिए डर क्या है ? मैंने, कौन-सा बुरा काम किया है जो मैं डरूँगी ?

कु०—हम चोरों की तरह क़िला छोड़कर निकल आये हैं। क्यों आये हैं, यह तुम्हीं जानती हो। परन्तु लोग क्या सोचेंगे, नव्वाब साहब भी क्या सोचेंगे, यह समझ लो।

द०—जो कुछ भी सोचें, ख़ुदा इन्साफ करनेवाले हैं—दूसरा इन्साफ़ मेरी निगाह में इन्साफ़ नहीं। बहुत होगा, जान जायगी, क्या मुजायका ?

कु०—लेकिन यहाँ खड़े खड़े कौन-सा काम पूरा होगा ?

द०—यहाँ खडे रहने पर पकड़ लिये जायँगे, इसी लिए यहाँ खड़े होंगे। पकड़ में आ जाना ही मेरा मतलब है। जो पकड़ेगा, वह मुझे कहाँ ले जायगा ?

कु०—इजलास मे।

द०—मेरे मालिक के पास ? मै वही जाना चाहती हूँ। कही और जाने की मेरे लिए जगह नही। वे अगर मेरे कत्ल का हुक्म दें तो मरते वक़्त उनसे कह सकूँगी कि मै बेक़सूर हूँ। बल्कि चलो, हम लोग किले के दरवाज़े पर चलकर बैठें। वहाँ जल्द पकड़े जायँगे।

ऐसे समय दोनों ने देखा, अँधेरे मे एक लम्बे क़द की पुरुष-मूर्ति गङ्गातट की ओर जा रही है। दोनों पेड़ के नीचे की छाँह मे चलकर छिपी। फिर उन्होंने भयपूर्वक देखा, वह दीर्घाकार पुरुष गङ्गा का रास्ता छोड़कर उनके आश्रयवाले पेड़ की तरफ़ आने लगा। देखकर दोनों औरतें और भी अँधेरे मे छिपीं।

दीर्घाकार पुरुष वहाँ आया। पूछा, "यहाँ तुम लोग कौन हो ?" यह कह कर जैसे अपने आप उसने धीमे स्वर से कहा "मेरी तरह रास्ते रास्ते रात जगता रहे, ऐसा अभागा कौन है ?"

दीर्घाकृति पुरुष को देखकर औरतें डरी था। उसका कण्ठस्वर सुनकर उनका भय जाता रहा। कण्ठस्वर बड़ा मधुर था—दुःख और दया से भरा हुआ। कुलसूम ने कहा, "हम औरतें हैं, आप कौन ?"

पुरुष ने कहा, "हम ? तुम कितनी औरतें हो ?"

कु०—हम सिर्फ दो हैं।

पु०—इतनी रात को यहाँ क्या कर रही हो ?

तब दलनी ने कहा, "हम बदक़िस्मत है—हमारे दुख की बातें सुनकर क्या कीजिएगा ?

आगन्तुक ने कहा, "मैं मामूली आदमी हूँ। मामूली आदमी से भी आदमी का उपकार हुआ करता है। तुम अगर मुसीबत की मारी हुई हो तो मैं अपनी ताक़त भर तुम्हारा उपकार करूँगा।

द०—हमारा उपकार प्रायः असाध्य है—आप कौन है ?

आगन्तुक ने कहा, "मै मामूली आदमी हूँ—सिर्फ एक गरीब ब्राह्मण, ब्रह्मचारी।"

द०—आप जो भी हों, आपकी बात सुनकर विश्वास करने की इच्छा हो रही है। जो डूब रहा है वह सहारे का योग्यता और अयोग्यता का विचार नहीं करती। यदि हमारी विपत्ति की बातें सुनना चाहते हैं तो राजपथ से दूर चलिए। रात को कौन कहाँ है, कहा नहीं जा सकता। हमारी बातें सबके सामने कही जानेवाली नहीं।

तब ब्रह्मचारी ने कहा, "तो तुम लोग मेरे साथ आओ।" यह कहकर वे दलनी और कुलसूम को साथ लेकर शहर की तरफ चले। एक छोटे-से मकान के सामने पहुँचकर दरवाज़े पर धक्का मारते हुए 'रामचरण' कहकर पुकारा। रामचरण ने आकर दरवाजा खोल दिया। ब्रह्मचारी ने उसे दिया जलाने की आज्ञा दी।

दिया जलाकर रामचरण ने ब्रह्मचारी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने रामचरण से कहा, "तुम जाकर लेटो।" सुनकर रामचरण एक दफ़ा दलनी और कुलसूम पर निगाह डालकर चला गया। कहना नहीं होगा कि फिर उस रात रामचरण की आँख नहीं लगी। ठाकुर जी इतनी रात को दो औरतें लेकर क्यों आये, उसकी यह भावना प्रबल रही। ब्रह्मचारी को रामचरण देवता मानता था—उन्हें जितेन्द्रिय समझता था, उसके विश्वास में कमी नहीं हुई। उसने अन्त में सिद्धान्त किया, "शायद ये दोनों औरतें, कुछ

दिन हुए, विधवा हो गई है, इनमें पति के साथ मरने की इच्छा पैदा करने के लिए ही ठाकुर जी इन्हे बुला लाये है—कितने दुख की बात है कि इतनी-सी बात अभी तक समझ मे नही आई थी।"

ब्रह्मचारी एक आसन पर बैठे। औरते जमीन पर बैठी। पहले दलनी ने अपना परिचय दिया। बाद को निष्कपटभाव से दलनी ने रात की कुल घटना सुनाई।

सुनकर ब्रह्मचारी ने सोचा, "भवितव्य कौन मिटा सकता है? जो कुछ होना है, वह अवश्य होगा। लेकिन इसलिए पुरुषकार को अवहेलना करना उचित नही। जो कर्तव्य है, वह अवश्य करूँगा।"

हाय, ब्रह्मचारी महाराज! ग्रन्थों को तुमने क्यों जलाया? सब ग्रन्थ भस्म होते है, लेकिन हृदय-ग्रन्थ तो भस्म नही होता। ब्रह्मचारी ने दलनी से कहा, "मेरी सलाह यह है कि आप एकाएक नव्वाब साहब के सामने हाजिर न हों। पहले खत के ज़रिये उन्हें कुल हाल लिखिए। यदि आपके लिए उनमें स्नेह होगा, तो, अवश्य आपकी बात पर उन्हे विश्वास होगा। बाद को उनका हुक्म मिलने पर उनके सामने हाजिर हूजिएगा।"

द०—खत लेकर कौन जायगा?

ब्र०—मै भेज दूँगा।

दलनी ने काग़ज़-क़लम माँगा। ब्रह्मचारी ने रामचरण को फिर जगाया। रामचरण काग़ज़-क़लम वगैरह लाकर रख गया। दलनी पत्र लिखने लगी।

तब तक ब्रह्मचारी कहने लगे, "यह मकान मेरा नहीं। परन्तु जब तक नव्वाब साहब का हुक्म न हो, तब तक यही रहिए। कोई मालूम नहीं कर सकेगा या कोई आकर कोई सवाल नही करेगा।"

लाचार, औरतों ने वैसा ही मञ्जूर किया। खत लिख जाने पर दलनी ने ब्रह्मचारी के हाथ में दिया। औरतों के रहने के बारे

मे रामचरण को उपयुक्त उपदेश देकर ब्रह्मचारी खत लेकर चले गये। मुङ्गेर के जो हिन्दू राजकर्मचारी थे, ब्रह्मचारी उनसे विशेष रूप से परिचित थे। मुसलमान भी उन्हे पहचानते थे। फलतः कुल कर्मचारी उन्हे मानते थे।

मुन्शी रामगोविन्द राय ब्रह्मचारी पर खास तौर से भक्ति करते थे। ब्रह्मचारी सूरज उगने के बाद मुङ्गेर के किले में गये और रामगोविन्द मे मुलाकात कर दलनी का पत्र उन्हें दिया। कहा, "मेरा नाम न लेना। एक ब्राह्मण खत ले आया है, यह कहना।" मुन्शी ने कहा, "आप जवाब के लिए कल आइए।" किसका खत है, यह कुछ मुन्शी को नहीं मालूम हो सका। ब्रह्मचारी फिर पहले-वाले घर मे लौट आये; दलनी के मुलाकात करके कहा, "कल जवाब आयेगा। किसी तरह आज वक्त पार करो।"

रामचरण ने सुबह को आकर देखा, सहमरण का कोई उद्योग नही हो रहा।

इस घर के ऊपरवाले तल्ले मे एक और व्यक्ति लेटा हुआ है। इस जगह उसका कुछ परिचय देना पड़ा। उसका चरित्र लिखती हुई शैवलिनी के चरित्र से कलुषिता मेरी यह लेखनी पुण्यमयी होगी।

चौथा परिच्छेद

प्रताप

सुन्दरी बहुत नाराज होकर ही शैवलिनी के बजरे से चली आई थी। कुल रास्ता शैवलिनी को गालियाँ देती हुई पति के पास आई थी। कभी 'अभागिन', कभी 'मुँहझौंसी', कभी 'घुरमुही'

आदि प्रिय सम्बोधन से शैवलिनी को अभिहित करके पति का कौतुक बढ़ाती हुई आई थी। घर आकर बहुत रोई थी। इसके बाद चन्द्रशेखर आकर देशत्यागी हो गये। इसके बाद कुछ दिन ऐसे ही बीते। शैवलिनी अथवा चन्द्रशेखर के कोई समाचार नहीं मिले। तब सुन्दरी ढाके की साड़ी पहनकर गहने पहनने बैठी।

हमने पहले ही कहा है, सुन्दरी चन्द्रशेखर के पड़ोसी की लड़की है और रिश्ते में बहन लगती है। उसके पिता बहुत मामूली हैसियत के आदमी नहीं हैं। सुन्दरी अक्सर पिता के यहाँ रहती थी। शैवलिनी की विपत्ति के समय श्रीनाथ वेदग्राम में थे, उनका परिचय पहले ही दिया जा चुका है। सुन्दरी ही मकान की गृहिणी है। उसकी माता रोग में पड़ी हुई अकर्मण्य रहती है। सुन्दरी की एक और छोटी बहन है, उसका नाम रूपसी है। रूपसी ससुराल में ही रहती है।

सुन्दरी ढाके की साड़ी और गहने पहनकर पिता से बोली, "मैं रूपसी को देखने जाऊँगी, उसके बारे में बड़ा बुरा स्वप्न देखा है।" सुन्दरी के पिता कृष्णकमल चक्रवर्ती कन्या के वशीभूत थे, थोड़ा-बहुत एतराज़ करके सम्मत हुए। सुन्दरी रूपसी को ससुराल गई। श्रीनाथ अपने घर गये।

रूपसी का पति वही प्रताप है। शैवलिनी से विवाह करने पर पड़ोसी के लड़के प्रताप को चन्द्रशेखर सदा देखते थे। चन्द्रशेखर प्रताप के चरित्र से बहुत खुश हुए। सुन्दरी की बहन रूपसी बड़ी हुई, तो उससे प्रताप की शादी करा दी। सिर्फ इतना ही नहीं, चन्द्रशेखर क़ासिमअलीखाँ के शिक्षक थे, उनके पास काफी पहुँच थी। चन्द्रशेखर ने नव्वाब के यहाँ प्रताप की नौकरी करा दी। प्रताप अपने गुणों से दिन पर दिन तरक्क़ी करने लगे। इस समय प्रताप ज़मींदार हैं। उनकी बृहत् अट्टालिका है और देशव्यापी नाम है। सुन्दरी की पालकी उनकी पुरी के अन्दर गई। रूपसी

सुन्दरी को देखकर प्रणाम कर सादर घर ले गई। प्रताप ने आकर साली से रहस्य-सम्भाषण किया।

बाद को अवकाश मिलने पर प्रताप ने सुन्दरी से वेदग्राम के कुल समाचार पूछे। दूसरी बातों के बाद चन्द्रशेखर की बात पूछी।

सुन्दरी ने कहा, "मैं वही बात कहने आई हूँ, कहती हूँ, सुनो।"

यह कहकर सुन्दरी ने शैवलिनी और चन्द्रशेखर का निर्वासन-वाला हाल सविस्तर वर्णन कर सुनाया। सुनकर प्रताप विस्मित और स्तब्ध हुए।

कुछ देर बाद प्रताप ने सर उठाकर कुछ रूखे भाव से सुन्दरी से कहा, "अब तक मुझे यह बात क्यों न कहला भेजी?"

सु०—क्यों, तुमसे कहकर क्या होगा?

प्र०—क्या होगा? तुम स्त्री हो, तुम्हारे पास शेखी नहीं बघारूँगा। मुझे कहला भेजने पर कुछ उपकार हो सकता था।

सु०—तुम उपकार करोगे या नहीं, यह मैं मालूम कैसे करती?

प्र०—क्यों, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मेरा सर्वस्व चन्द्रशेखर से है?

सु०—लेकिन सुना है, कोई बड़ा आदमी होता है तो पहले की बातें भूल जाता है।

प्रताप गुस्से में आकर अधीर और निर्वाक् होकर उठ गये। गुस्सा देखकर सुन्दरी को बड़ा आह्लाद हुआ।

दूसरे दिन प्रताप एक ब्राह्मण रसोइया और सिर्फ एक नौकर, साथ लेकर मुङ्गेर गये। नौकर का नाम रामचरण है। प्रताप कहाँ गये, यह बतलाकर नहीं गये। सिर्फ़ रूपसी से कह गये, "मैं शैवलिनी और चन्द्रशेखर की खोज करने जा रहा हूँ। पता लगाये बिना नहीं लौटूँगा।"

जिस मकान मे ब्रह्मचारी दलनी को छोड़ गये थे, मुङ्गेर मे वही प्रताप के टिकने का घर है।

सुन्दरी ने कुछ दिन बहन के पास रहकर इच्छा पूरी कर बहन को गालियाँ दी; सुबह, दुपहर और शाम को सुन्दरी रूपसी के पास साबित करती थी कि शैवलिनी की जैसी पापिष्ठा और अभागिन पृथ्वी पर दूसरी पैदा नही हुई। एक दिन रूपसी ने कहा, "यह तो सही है, लेकिन तुम उसके पीछे इतनी दौड़धूप क्यों करती फिरती हो?"

सुन्दरी ने कहा, "उसका सर चबा जाऊँगी इसलिए—उसे यम के घर भेजूँगी इसलिए—उसके मुँह में आग लगाऊँगी इसलिए" आदि आदि।

रूपसी ने कहा, "दीदी, तू बड़ी लड़ाका है।"

सुन्दरी ने जवाब दिया, "उसी ने तो मुझे लड़ाका बना दिया है।"

पाँचवाँ परिच्छेद

गङ्गा के तट पर

कलकत्ते की कौंसिल ने निश्चय किया था, नव्वाब से लड़ेगी। उस समय अज़ीमाबाद की कोठी में कुछ हथियार भेजना ज़रूरी था, इसलिए हथियारों से एक नाव भरकर भेज दी गई।

अज़ीमाबाद के अध्यक्ष इल्लिस साहब को कुछ गुप्त उपदेश भेजना ज़रूरी हुआ। अमियट साहब नव्वाब से समझौता करने के

लिए मुङ्गेर में थे, वहाँ वे क्या कर रहे हैं, क्या समझे, बग़ैर मालूम किये इलिस को किसी प्रकार की निश्चित सलाह नहीं भेजी जा सकती थी, अस्तु, वहाँ एक चतुर कर्मचारी भेजना आवश्यक हुआ। वह अमियट से मुलाकात करके उनकी सलाह लेकर इलिस के पास जायगा और कलकत्ते की कौन्सिल का अभिप्राय और अमियट का अभिप्राय उन्हें समझा देगा।

इन कामों के लिए गवर्नर ने बन्सीटर्ट फस्टर को पुरन्दरपुर से बुलाया। वे रखवाली करते हुए हथियारों की नाव ले जायँगे और अमियट से मुलाक़ात करके पटना जायँगे। अस्तु फस्टर को कलकत्ता आते ही पछाँह की यात्रा करनी पड़ी। उन्हें ये सब खबरें पहले ही मिल चुकी थीं, इसलिए शैवलिनी को पहले ही मुङ्गेर भेज दिया था। रास्ते में फ़स्टर ने शैवलिनी को पकड़ा।

हथियारों की नाव और शैवलिनी के साथ मुङ्गेर पहुँचकर फ़स्टर ने किनारे नावें बाँधी। अमियट से मुलाक़ात करके बिदा हुए। परन्तु इसी समय गुरगन ख़ाँ ने नाव रोकी। तब अमियट की नव्वाब से बाचचीत बढ़ चली। आज अमियट से फ़स्टर की यह बात तय हुई कि अगर नव्वाब नाव छोड़ दें तो अच्छा है, नहीं तो कल सुबह फ़स्टर हथियारोंवाली नाव छोड़कर पटना चले जायँगे।

फस्टर की दो नावें मुङ्गेर के घाट पर बँधी हैं। एक देशी भड़ है--आकार में बड़ा। दूसरा बजरा। भड़ पर नव्वाब के कुछ सिपाही पहरा दे रहे हैं। किनारे भी कुछ सिपाही हैं। इसी में हथियार लदे हैं। इसे ही गुरगन ख़ाँ ने रोका है।

बजरे में हथियार नहीं। वह भड़ से प्रायः पचास हाथ दूर है। उस पर नव्वाब का पहरा नहीं लगा। छत पर अँगरेज़ों का सिपाही एक तिलङ्गा बैठा पहरा दे रहा है।

आधी रात है । अँधेरी रात, लेकिन साफ़ । बजरे का पहरेदार एक दफ़ा उठ रहा है, एक दफा बैठ रहा है, एक दफ़ा नीद में झपक रहा है । किनारे सीको का वन था । उसकी आड़ में रह कर एक आदमी किसी को निरीक्षण कर रहा है । निरीक्षणकारी स्वयं प्रताप राय हैं ।

प्रताप राय ने देखा, पहरेवाला झपक रहा है । तब प्रताप धीरे धीरे पानी में उतरे; पानी की छलक सुनते ही ढुलकते हुए पहरेवाले ने पूछा—"हुक्म सदर ?" (Who comes there ?) प्रताप राय ने जवाब नहीं दिया । पहरेदार फिर झपकने लगा । नाव के भीतर फ़स्टर सजग थे । पहरेदार की आवाज़ सुनकर उन्होंने बजरे के भीतर से इधर-उधर निगाह दौड़ाई । देखा, एक आदमी पानी में नहाने के लिए उतरा है ।

ऐसे समय सींको के वन मे एकाएक बन्दूक की आवाज़ हुई । बजरे के पहरेवाले को गोली लगी, वह घायल होकर पानी में गिर गया । प्रताप तब जहाँ नाव की अँधेरी छाया पड़ रही थी, वहाँ आकर होंठ तक डुबाये रहे ।

बन्दूक़ की आवाज़ होते ही भड़ के सिपाही 'क्या है, क्या है ।' कहते हुए शोर-गुल करने लगे । नाव के और ओर आदमी जग गये । फ़स्टर हाथ में बन्दूक़ लेकर बाहर निकल आये ।

लारेन्स् फ़स्टर बाहर निकलकर चारों तरफ़ निगाह दौड़ाकर देखने लगे । देखा, उनका तिलङ्गा पहरेदार नज़र नही आ रहा । तारों के प्रकाश में देखा, उसको लाश तिर रहा है । पहले सोचा, नव्वाब के सिपाहियों ने मारा है; परन्तु उसी समय सींकों के वन की ओर एक धुएँ को रेखा देखी । और भी देखा, उनके साथ दूसरी नाव के आदमी, 'मामला क्या है', मालूम करने के लिए दौड़े आ रहे हैं । आकाश में तारे चमक रहे हैं—गङ्गा के किनारे सैकड़ों बड़ी बड़ी नावों की क़तारें अँधेरे में सोती हुई राक्षसियों की

तरह निश्चेष्ट हैं--कलरव करती हुई अनन्तवाहिनी गङ्गा चली जा रही है। उसी बहाव में पहरेदार की लाश बही जा रही है। पलमात्र में फ़स्टर ने यह सब देखा।

सीकों के वन में कुछ तरल धूम की रेखा देखकर फ़स्टर अपने हाथ की बन्दूक़ उठाकर उसी वन की ओर निशाना साध रहे थे। फ़स्टर अच्छी तरह समझ गये थे कि दुश्मन इसी वन की आड में छिपा हुआ है। यह भी समझ गये थे कि जिस दुश्मन ने अदृश्य रहकर पहरेवाले को मारा है, तत्काल वह उन्हें भी मार सकता है। लेकिन वे पलासी के युद्ध के बाद भारतवर्ष में आये थे, देशी आदमी अँगरेज़ पर निशाना साधेगा, इस खयाल को उन्होंने मन में जगह नहीं दी। और अँगरेज़ होकर जो देशी दुश्मन से डरेगा, उसके लिए मौत अच्छी। यह सोचकर उन्होंने उस जगह खड़े होकर बन्दूक़ तोली थी। लेकिन उसी वक्त सीकों के वन में आग की शिखा जल उठी। फिर बन्दूक की आवाज़ हुई। फ़स्टर के सर पर गोली लगी। पहरेदार की तरह चोट खाकर वे गङ्गा के स्रोत पर गिरे। उनके हाथ की बन्दूक छूटकर वही नाव पर खट्ट से गिरी।

प्रताप ने उसी समय कमर से छुरी खींच ली और बजरे की कुल रस्सियाँ काट दीं। वहाँ पानी कम था और बहाव मन्द, इसलिए मल्लाहों ने लङ्गर नहीं डाला था। डालने पर भी लघुहस्त बलवान् प्रताप के लिए कोई बड़ी बाधा न होती। प्रताप उछलकर बजरे के ऊपर आये।

इन घटनाओं की वर्णना में जितना वक़्त लगा है, इसके शतांश समय में ही ये सब काम हो गये थे। पहरेदार का गिरना, फ़स्टर का बाहर आना, उनका गिरना और प्रताप का नाव पर चढ़ना, इन कामों में जो वक़्त लगा था, तब तक दूसरी नाव के आदमी बजरे तक पहुँच नहीं सके थे; लेकिन वे लोग भी आये।

आकर देखा, नाव प्रताप के कौशल से दूर पानी मे पहुँच चुकी है। एक आदमी तैर कर नाव पकड़ने आया। प्रताप ने एक लग्गी उठाकर उसके सर पर मारा। वह लौट गया। फिर दूसरा नही बढ़ा। उसी लग्गी से प्रताप नाव खेने लगे। नाव घूमकर गहरे पानी में तेज़ बहाव में, गई और वेग से पूरब को चली।

लग्गी हाथ में लिये हुए घूमकर प्रताप ने देखा, एक दूसरा तिलङ्गा नाव की छत पर घुटने टेक कर बैठा हुआ बन्दूक़ तोल रहा है। प्रताप ने लग्गी घुमाकर सिपाही के हाथों पर मारा। उसके हाथ अवश हो गये, बन्दूक़ गिर गई। प्रताप ने वह बन्दूक उठा ली। फिर उन्होंने नाव के कुल आदमियों से कहा, "सुनो, मेरा नाम प्रताप राय है। नव्वाब भी मुझसे डरते हैं। इन दो बन्दूक़ों और लग्गी की चोटों से शायद तुम इनेगिने कुछ आदमियों को अकेला ही मार सकता हूँ। तुम अगर मेरी बात मानोगे तो मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगा। मै पतवार पकड़ता हूँ, डाँड़ी जितने हैं, डाँड़ सँभाले। बाक़ी आदमियों में जो जहाँ है, वहीं रहे। हिलते ही जान से हाथ धोना होगा। नही तो कोई डर नही।"

यह कहकर प्रताप राय ने लग्गी खोंच खोंचकर डाँड़ियों को जगा दिया। डर से सिकुड़कर उन लोगों ने डाँड़ सँभाला। प्रताप राय ने नाव की पतवार पकड़ी। किसी ने फिर कुछ नही कहा। नाव तेज़ी से चली। भड़ से दो-एक आवाज़ें बन्दूक की हुईं, लेकिन किसे लक्ष्य बनाना है, तारों के प्रकाश में यह निश्चय कोई नहीं कर सका, इसलिए आवाज़ें इसके बाद ही बन्द हो गईं।

तब भड़ से कुछ आदमी डोंगी पर चढ़कर बन्दूक़ें लेकर बजरा पकड़ने आये। प्रताप ने पहले कुछ नही कहा। वे पास आये तब उन पर लक्ष्य करके दोनों बन्दूक़ें एक साथ दागीं। दो आदमी घायल हुए, बाक़ी आदमी डरकर डोंगी फेरकर भग खड़े हुए।

सीकों के वन में छिपा हुआ रामचरण प्रताप को निष्कण्टक

देखकर और भड़ के सिपाहियों को वन में खोजने के लिए आते हुए देखकर धीरे-धीरे वहाँ से निकल गया।

छठा परिच्छेद

वज्राघात

रात को गङ्गा में चलनेवाली उस नाव में नींद से शैवलिनी जगी।

बजरे में दो कमरे हैं--एक में फ़स्टर थे, दूसरे में शैवलिनी और उसकी दासी। शैवलिनी अब भी बीबी नहीं बनी। काली किनारी की साड़ी पहने हुए, हाथों में कङ्कन, पैरों में कड़े, साथ वही पुरन्दरपुर की दासी पार्वती। शैवलिनी सो रही थी; उस भीमा पुष्करिणी के चारों ओर जल को छूने की प्रार्थिनी शाखाओं से किनारे किनारे अँधेरी रेखा पड़ी हुई है, शैवलिनी जैसे पद्म बनकर उस पर मुँह उठाये तिर रही है। सरोवर के किनारे जैसे एक सोने का राजहंस विचर रहा है; वही एक सफ़ेद सुअर घूम रहा है। राजहंस देखकर शैवलिनी जैसे उसे पकड़ने के लिए उत्सुक हो गई है, परन्तु राजहंस उसकी तरफ़ से मुँह फेरकर चला जा रहा है। सुअर शैवलिनी-पद्म को पकड़ने के लिए चक्कर काट रहा है। राजहंस का मुँह नहीं देख पड़ रहा, लेकिन सुअर मुँह देखने पर मालूम हो रहा है जैसे फस्टर के मुँह की तरह है। शैवलिनी राजहंस को पकड़ने के लिए जाना चाहती है, परन्तु पैर मृणाल बनकर पानी में गड़ गये हैं, उसकी गति अचल हो गई है। इधर सुअर कह रहा है, "मेरे पास आओ, मैं हंस पकड़ दूँगा।" बन्दूक़

की पहली आवाज़ से शैवलिनी की नींद टूट गई। इसके बाद पहरेदार के पानी में गिरने की आवाज़ उसने सुनी। कच्ची, टूटी हुई नींद के आवेश में कुछ देर तक वह समझ नहीं सकी। वही राजहंस--वही सुअर याद आते रहे। जब फिर बन्दूक़ की आवाज़ हुई और बड़ा शोरगुल उठने लगा, तब पूरी तरह उसकी नींद टूट गई। बाहर के कमरे में आकर द्वार से एक बार देखा, कुछ समझ नही सकी। फिर भीतर आई। भीतर बत्ती जल रही थी। पार्वती भी उठ पड़ी थी। शैवलिनी ने पार्वती से पूछा, "क्या हो रहा है, कुछ तुम्हारी समझ में आया ?"

पा०--कुछ नही। लोगों की बातों से, मालूम दे रहा है, नाव पर डाकू लगे हैं--साहब को मार डाला है--हमारे ही पापो का फल है।

शै०--साहब को मारा है, इसमें हमारे पाप का फल क्या है ? साहब के ही पाप का फल है।

पा०--डाकू लगे हैं--विपद् हमीं लोगों की है।

शै०--कैसी विपद् ? एक डाकू के साथ थे; न हो फिर दूसरे डाकू के साथ चलेंगे। अगर गोरे डाकू के हाथों से छूटकर काले डाकू के हाथ पड़ें तो बुरा क्या है ?

यह कहकर शैवलिनी छोटे से सर से पीठ पर लटकती वेणी हिलाती हुई ज़रा हँसकर छोटे से पलंग पर जाकर बैठी। पार्वती ने कहा, "इस समय तुम्हारी हँसी मुझसे सही नही जाती।" शैवलिनी ने कहा, "नही सही जाती तो गङ्गा में पानी है, डूब मरो। मेरे हँसने का वक़्त हुआ है, मैं हँसूँगी। एक डाकू को बुला ला, कुछ पूछ-ताँछ करूँ।"

पार्वती ग़ुस्से में आकर बोली, बुलाना नही होगा, वे अपने आप आयेंगे।

लेकिन चार दण्ड समय बीत गया, कोई डाकू नही आया।

शैवलिनी तब दुखी होकर बोली, "हमारे कैसे भाग हैं। डाकू भी बुलाकर नहीं पूछते।" पार्वती काँप रही थी।

बड़ी देर बाद नाव एक रेती पर आकर लगी। कुछ देर वहाँ नाव लगी रही। बाद को कुछ लठैत वहाँ एक पालकी लेकर हाज़िर हुए। उनके आगे आगे रामचरण था।

कहारों ने रेती पर पालकी रक्खी। रामचरण बजरे पर चढ़कर प्रताप के पास गया। बाद को प्रताप का आदेश लेकर वह बजरे के भीतर गया। पहले उसने पार्वती के मुँह की ओर देखा, फिर शैवलिनी को देखा। शैवलिनी से कहा, "आप उतरिए।"

शैवलिनी ने पूछा, "तुम कौन हो?—हम कहाँ चलेंगे?" रामचरण ने कहा, "मैं आपका नौकर हूँ। कोई चिन्ता न कीजिए, मेरे साथ आइए। साहब दम तोड़ चुका है।"

शैवलिनी चुपचाप उठकर रामचरण के साथ चली। रामचरण के साथ साथ नाव से उतरी। पार्वती साथ जा रही थी, रामचरण ने उसे मना किया। डरकर पार्वती नाव पर ही रही। रामचरण ने शैवलिनी को पालकी में बैठने के लिए कहा, शैवलिनी बैठी। रामचरण पालकी के साथ प्रताप के घर गया।

उस समय भी दलनी और कुलसूम उस घर में रह रही थी। उनकी नींद उखड़ जायगी, सोचकर रामचरण शैवलिनी को वहाँ नहीं ले गया जहाँ वे थी। ऊपर ले जाकर विश्राम करने के लिए कह कर जलती हुई बत्ती रखकर रामचरण शैवलिनी को प्रणाम कर द्वार बन्द कर चलने को हुआ कि शैवलिनी ने पूछा, "यह किसका मकान है?" रामचरण यह बात अनसुनी कर गया।

अपनी अक्ल लड़ाकर रामचरण शैवलिनी को प्रताप के घर ले आया था। प्रताप की वैसी आज्ञा नहीं थी। उन्होंने रामचरण से कहा था, पालकी जगत सेठ के घर ले जाना। रास्ते में रामचरण ने सोचा—"इतनी रात को जगत सेठ का फाटक खुला मिले या

नहीं । दरबान घुसने देंगे या नहीं । पूछने पर क्या परिचय दूँगा ? परिचय देने पर मैं ख़ूनी क़रार देकर पकड़ा जाऊँ तो ? इस फ़साद में पड़ने का क्या काम ? इस वक्त घर चलना ही ठीक है ।" यह सोचकर पालकी घर ले आया ।

इधर, पालकी चली गई देखकर, प्रताप नाव से उतरे । पहले ही उनके हाथ में, बन्दूक देखकर सब लोग चुप हो गये थे, अब उनके सहायक लठैतों को देखकर कोई कुछ नहीं बोला । प्रताप नाव से उतर कर अपने घर की ओर चले । अपने दरवाज़े आकर दरवाज़े पर थपकी दी, रामचरण ने दरवाज़ा खोल दिया । रामचरण ने उनकी आज्ञा के ख़िलाफ़ काम किया था, यह घर आते ही रामचरण से उन्होंने सुना । सुनकर कुछ असन्तुष्ट हुए । कहा, "अब भी उन्हें साथ लेकर जगत सेठ के यहाँ ले जाओ । बुला लाओ ।"

रामचरण ने आकर देखा, सुनकर लोगों को आश्चर्य होगा, शैवलिनी सो रही थी । इस हालत मे नींद नहीं आती । आती है या नहीं, हमें नहीं मालूम । हम, जैसी घटना हुई, वैसा ही लिख रहे हैं । रामचरण ने शैवलिनी को जगाये बिना प्रताप के पास लौटकर कहा, "वे सो रही हैं, क्या नींद से जगा दूँ ?" सुनकर प्रताप ताअज्जुब में आये । मन ही मन कहा, "चाणक्य पंडित ने लिखने की ग़लती की है, नींद औरतों में सोलह गुना है ।" खुलकर कहा, "परेशान करने की ज़रूरत नहीं । तुम लेटो । मिहनत की हद हो चुकी है । हम भी अब जग विश्राम करेंगे ।"

रामचरण लेटने गया । तब भी कुछ रात थी । घर--घर के बाहर नगर--सब जगह निस्तब्धता थी, अँधेरा । प्रताप अकेले चुपचाप ज़ीने से ऊपर गये । अपने शयन-कक्ष की तरफ़ चले । वहाँ पहुँचकर दरवाज़ा खोला, देखा, पलँग पर शैवलिनी लेटी हुई है । रामचरण कहने को भूल गया था कि प्रताप के शयन-कक्ष में ही वह शैवलिनी को छोड़ आया है ।

जलते हुए दीये के प्रकाश में प्रताप ने देखा, श्वेत शय्या पर किसी ने खिले हुए निर्मल फूलों की राशि डाल दी है। जैसे वर्षा में गङ्गा के स्थिर श्वेत वारि-विस्तार पर किसी ने प्रफुल्ल श्वेत पद्मराशि बहा दी है। मन को मोह लेनेवाली स्थिर शोभा है। देखकर प्रताप एकाएक आँखें फेर नहीं सके। सौन्दर्य से मुग्ध होने या इन्द्रिय के वश हो जाने के कारण उनकी निगाह नहीं हटी, ऐसी बात नहीं, सिर्फ अनमने होने के कारण वे विमुग्ध की तरह देखते रहे। बहुत दिनों की बात उन्हें याद आई; एकाएक स्मृति के समुद्र को मथकर तरङ्ग पर तरङ्ग उठने और गिरने लगी।

शैवलिनी सोई नहीं, आँखें बन्द किये अपनी दशा पर विचार कर रही थी। आँखें मुँदी हुई देखकर रामचरण ने यह सोचा था कि शैवलिनी सो गई है; गहरी चिन्ता के कारण प्रताप के प्रवेश की पहली पदध्वनि शैवलिनी नहीं सुन सकी। प्रताप बन्दूक हाथ में लेकर ऊपर आये थे। अब दीवार के सहारे बन्दूक रक्खी। कुछ अनमने थे—सावधानी से बन्दूक नहीं रख सके, रखते वक़्त बन्दूक गिर गई। उसी आवाज से शैवलिनी ने आँखें खोल दीं। प्रताप को देखा। आँखें पोंछकर शैवलिनी उठकर बैठ गई। ऊँचे स्वर से पूछा, "यह क्या ? तुम कौन हो ?"

यह कहकर शैवलिनी पलँग पर मूर्च्छित हो गई। प्रताप पानी लाकर शैवलिनी के मुँह मे छींटे मारने लगे। वह मुँह ओस के भरे पद्म की तरह शोभा देने लगा। बालों के गुच्छों को गीला कर, सीधा कर, पानी की बूँदें टपकने लगा। बाल पद्म से लिपटे शैवाल जैसी शोभा देने लगे।

जल्द शैवलिनी को होश हुआ। प्रताप खड़े रहे। स्थिरभाव से शैवलिनी ने कहा, "कौन हो तुम ? प्रताप ? या कोई देवता हो, छलने के लिए आये हो ?"

प्रताप ने कहा, "मैं प्रताप हूँ।"

शै०—एक दफ़ा नाव पर मालूम हुआ था, जैसे तुम्हारी आवाज़ कानों में गई। लेकिन तभी समझी कि वह भ्रान्ति थी। मैं स्वप्न देखती हुई जग गई थी, उसी कारण उसे भ्रान्ति सोचा।

यह कहकर लम्बी साँस छोड़कर शैवलिनी चुप हो गई। शैवलिनी पूरी तरह स्थिर हो गई है देखकर प्रताप बिना कुछ कहे चलने को हुए। शैवलिनी ने कहा, "जाना नहीं।"

प्रताप अनिच्छा से खड़े रहे। शैवलिनी ने पूछा, "तुम यहाँ क्यों आये हो ?"

प्रताप ने कहा, "यह मेरा मकान है।"

शैवलिनी वास्तव में स्थिर नहीं हुई थी। हृदय में आग जल रही थी। उसके नख तक काँप रहे थे। कुल अङ्ग रोमाञ्चित था। कुछ देर चुप रहकर धैर्य लाकर उसने पूछा, "मुझे यहाँ कौन ले आया ?"

प्र०—हमी लोग ले आये हैं।

शै०—हमी लोग ? हमी लोग कौन कौन ?

प्र०—मैं और मेरा नौकर।

शै०—क्यों तुम लोग यहाँ ले आये ? तुम्हारा क्या प्रयोजन ?

प्रताप बहुत ही रुष्ट हुए। कहा, "तुम्हारी जैसी पापिष्ठा का मुँह भी नहीं देखना चाहिए। म्लेच्छ के हाथों से तुम्हारा उद्धार किया, उलटा तुम पूछती हो, यहाँ क्यों ले आये ?"

क्रोध देखकर शैवलिनी ने क्रोध नहीं किया। बिभीतभाव से, प्रायः बाष्प-गद्गद होकर कहा, "यदि मेरा म्लेच्छ के घर रहना इतनी बड़ी दुर्भाग्य की बात सोची थी, तो मुझे उसी जगह मार क्यों नहीं डाला ? तुम्हारे हाथ में तो बन्दूक़ थी।"

प्रताप ओर क्रुद्ध हुए । कहा, "ऐसा भो करता, सिर्फ़ नारी-हत्या के डर से नहीं किया; परन्तु तुम्हारी मौत हो अच्छो है ।"

शैवलिनी रोई । बाद को आँसू रोककर कहा, "मेरा मरना हो अच्छा है । लेकिन दूसरे जो कुछ कहते हैं, कहें; तुम मुझसे ऐसी बात न कहो । मेरी यह दुर्दशा किससे है ? तुमसे । किसने मेरा जोवन अन्धकारमय कर दिया है ? तुमने । किसके लिए सुख को आशा से निराश होकर सुपथ और कुपथ के ज्ञान से रहित हो गई हूँ ?--तुम्हारे लिए । किसके लिए दुःखिनी हुई ?--तुम्हारे लिए । किसके कारण मैं गृहधर्म में मन नही लगा सकी ?--तुम्हारे कारण । तुम मुझे गालियाँ न दो ।"

प्रताप ने कहा, "तुम पापिष्ठा हो, इसी लिए तुम्हें गालियाँ देता हूँ । मेरा दोष है ? ईश्वर जानते है, मैं किसी दोष से दोषो नही हूँ । ईश्वर जानते हैं, उधर मैं तुम्हें नागिन समझकर मारे डर के तुम्हारो राह छोड़कर चलता था । तुम्हारे ज़हर के डर से वेदग्राम छोड़ दिया था । तुम्हारे अपने हृदय का दोष है--तुम्हारो प्रवृत्ति का दोष है । तुम पापिष्ठा हो, इसो लिए मुझे दोष देतो हो । मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

शैवलिनी गरज उठी--कहा, "तुमने क्या किया है ? क्यों तुम अपनो यह अतुल्य देवमूर्त्ति-से मुझे फिर दिखलाई पड़े ? मेरे खिलते हुए यौवन के समय वह रूप को ज्योति क्यों मेरे सामने जलाई ? जो कुछ मैं एक बार भूल चुकी थो, उसे क्यों फिर से उद्दीप्त किया ? मैंने क्यों तुम्हें देखा था ? देखा था तो तुम्हें पाया क्यों नही ? नही पाया तो मरी क्यों नही ? तुम क्या नही जानते, तुम्हारे रूप के ध्यान से मेरा घर अरण्य हो गया था ? तुम क्या नही जानते कि तुमसे सम्बन्ध छिन्न हो जाने के बाद, अगर कभी तुम्हें पा सकूँ, इसी आशा से मैंने घर छोड़ा है ? नही तो फ़स्टर मेरा कौन है ?"

सुनने पर प्रताप के सर पर जैसे वज्र गिरा । बिच्छू के काटे की तरह पीड़ित होकर उस जगह से वे भग गये ।

उसी समय दरवाज़े के बाहर बड़ा शोरगुल उठा ।

सातवाँ परिच्छेद

गलस्टन् और जानसन्

रामचरण के नाव से शैवलिनी को ले जाने और प्रताप के नाव से उतर जाने पर, जिस तिलङ्गा सिपाही के हाथ प्रताप की मार से झूठे पड़ गये थे, वह छत पर बैठा था, धीरे धीरे किनारे उतरकर ऊपर चढ़ा । चढ़कर, जिस रास्ते शैवलिनी को सवारी गई थी, उसी रास्ते चला । दूर रहकर पालकी पर निगाह रक्खे हुए उसका पीछा करता गया । वह मुसलमान था, नाम बकाउल्ला खाँ । क्लाइव के साथ पहले जो सेना बङ्गाल आई थी, वह मद्रास से आई थी । उसके सैनिक को बङ्गाल में तिलङ्गा कहते थे । लेकिन इस समय बहुत से हिन्दुस्तानी हिन्दू और मुसलमान अँगरेज़ों की सेना में आ गये थे । इन्हें भी तिलङ्गा कहते थे । बक़ाउल्ला ग़ाज़ीपुर के पास का रहनेवाला था ।

बक़ाउल्ला पालकी के साथ साथ अलक्ष्य रहकर प्रताप के मकान तक आया । देखा, शैवलिनी प्रताप के मकान में गई । बक़ाउल्ला तब अमियट साहब की कोठी गया ।

वहाँ पहुँचकर बक़ाउल्ला ने देखा, कोठी में बड़ा शोरगुल उठ रहा है । बजरे के कुल वृत्तान्त अमियट साहब सुन चुके थे । बक़ाउल्ला ने सुना, अमियट ने हुक्म दिया है कि जो आज ही रात को अत्याचारियों का पता बता देगा उसे एक हज़ार रुपया इनाम मिलेगा । तब बक़ाउल्ला अमियट साहब से मिला । उन्हें कुल ख़बर सुनाई ।

कहा, "मैं उस डाकू का मकान बता दे सकता हूँ।" अमियट साहब का चेहरा खिल गया। टेढ़ी भौंहें सीधी हो गईं। तीन-चार सिपाही और एक नायक को बकाउल्ला के साथ जाने की आज्ञा दी। कहा, "बदमाशों को पकड़कर हमारे पास ले आओ।" बक़ाउल्ला ने कहा, "तो दो अँगरेज़ साथ दीजिए—प्रताप राय पूरा शैतान है—ये देशी आदमी उसे पकड़ नहीं सकेंगे।"

गल्स्टन् और जान्सन् नाम के दो अँगरेज़ अमियट की आज्ञा के अनुसार बक़ाउल्ला के साथ हथियारबन्द होकर चले।

चलते हुए गल्स्टन् ने बकाउल्ला से पूछा, "तुम उस मकान के भीतर कभी गये हो?"

बक़ाउल्ला ने कहा, "नहीं।"

गल्स्टन् ने जान्सन् से कहा, "तो बत्ती और दियासलाई भी लो। हिन्दू तेल नहीं जलाते—खर्च होगा।"

जान्सन् ने जेब में बत्ती और दियासलाई ले ली।

वे लोग अँगरेजों की युद्धयात्रा के गम्भीर पदक्षेपों से आमरास्ते से चले। किसी ने बातचीत नहीं की। पीछे पीछे चार सिपाही, नायक और बक़ाउल्ला चले। शहर के पहरेवाले रास्ते पर उन्हें देखकर डरकर हटकर खड़े हुए। गल्स्टन् और जान्सन् ने सिपाहियों को लेकर प्रताप के मकान के सामने चुपचाप आकर द्वार पर धीरे धीरे कराघात किया। रामचरण उठकर द्वार खोलने आया।

रामचरण अद्वितीय नौकर है। हाथ-पैर दबाने, तेल लगाने में दक्ष है। कपड़े चुनने, अङ्गराग करने मे भी बड़ा पटु। रामचरण जैसा हुक्म बजा लानेवाला दूसरा नहीं, उसके जैसा चीजें ख़रीदने-वाला मिलना मुश्किल है। लेकिन ये सब मामूली गुण हैं। मुर्शिदाबाद प्रदेश में रामचरण लठैती में प्रसिद्ध है। कितने हिन्दू और यवन उसके हाथों की सफ़ाई से ज़मीन चूम चुके थे। बन्दूक़ में रामचरण कैसा अचूक निशाना लगाता है, और कैसा जल्द-

बाज़ है, इसका परिचय गङ्गाजल पर फ़स्टर के रुधिर से लिखा जा चुका है ।

परन्तु इन सबसे बढ़कर रामचरण में एक और समयोपयोगी गुण है—धूर्त्तता । रामचरण स्यार जैसा चालाक है । फिर भी अद्वितीय स्वामिभक्त और विश्वासी है ।

दरवाज़ा खोलने के लिए आकर रामचरण ने सोचा, "इस समय दरवाज़े पर कौन धक्के मार रहा है ? जान पड़ता है, ठाकुर जी हैं । परन्तु जो कुछ भी हो, एक मामला करके आ रहा हूँ, रात को बिना देखे दरवाजा नही खोलूँगा ।"

यह सोचकर रामचरण चुपचाप दरवाज़े के पास आकर कुछ देर तक खड़ा हुआ आहट लेने लगा । सुना, दो आदमी धीरे धीरे एक विकृत भाषा मे बातचीत कर रहे है । रामचरण उस भाषा को इण्डिल-मिण्डिल कहता था । आजकल के आदमी कहते हैं—अँगरेज़ी । रामचरण ने मन ही मन कहा, "रहो बच्चू, दरवाज़ा खोलूँगा तो बन्दूक़ हाथ में लेकर । इण्डिल-मिण्डिल पर जो विश्वास करे, वह साला है ।"

रामचरण ने और भी सोचा, "जान पड़ता है, एक बन्दूक़ से काम नही चलेगा, मालिक को भी बुला लूँ ।" यह सोचकर रामचरण प्रताप को बुलाने के इरादे दरवाज़े से लौटा ।

इस समय तक अँगरेज़ों का भी धैर्य जाता रहा । जान्सन् ने कहा, "प्रतीक्षा क्यों, लात मारो, भारतीय दरवाज़ा अँगरेज़ी लात से नही टिकेगा ।"

गल्स्टन् ने लात मारी । दरवाज़ा कड़-कड़ खट-खट झन-झन कर उठा । रामचरण दौड़ा । आवाज़ प्रताप के कानों में गई । प्रताप ऊपर मे ज़ीना उतरने लगे । उस दफ़ा दरवाज़ा नही टूटा ।

बाद को जान्सन् ने लात मारी । दरवाज़ा टूटकर गिर गया ।

"इसी तरह ब्रिटिश की लातों की मार से सारा भारत

टूटकर गिर जाय।" कहकर अँगरेज़ घर के भीतर घुसे। साथ-साथ सिपाही भी घुसे।

ज़ीने पर रामचरण से प्रताप की मुलाक़ात हुई। रामचरण ने चुप्पे-चुप्पे प्रताप से कहा, "अँधेरे में छिप जाओ—अँगरेज़ आये है, जान पड़ता है, आमबात की कोठी से।" रामचरण अमियट की जगह आमबात कहता था।

प्र०—डर क्या है ?

रा०—आठ आदमी हैं।

प्र०—खुद छिप रहेंगे, और इस मकान मे कई स्त्रियाँ है, उनकी दशा क्या होगी ? तुम मेरी बन्दूक़ ले आओ।

रामचरण अगर अँगरेज़ों का सही सही परिचय जानता होता तो प्रताप से कभी छिपने के लिए न कहता। वे लोग जब तक बातचीत कर रहे थे, तब तक एकाएक घर उजाले से भर गया। जान्सन् ने जलाई बत्ती एक सिपाही के हाथ मे दी। बत्ती के उजाले में अँगरेज़ों ने देखा, ज़ीने पर दो आदमी खड़े है। जान्सन् ने बक़ाउल्ला से पूछा, "क्यों ? यही है ?"

बकाउल्ला ठीक-ठीक पहचान नही सका। अँधेरी रात में उसने प्रताप और रामचरण को देखा था, इसलिए अच्छी तरह नहीं पहचान सका। लेकिन उसके टूटे हाथ का दर्द सहा नही जा रहा था, कोई भी उसका ज़िम्मेदार है। बक़ाउल्ला ने कहा, "हाँ, यही हैं।"

तब बाघ की तरह कूदकर अँगरेज़ ज़ीने पर चढ़े। पीछे पीछे सिपाही भी आये देखकर रामचरण प्रताप की बन्दूक़ लाने के लिए तेज़ी से ऊपर चढ़ा।

जान्सन् ने देखा, हाथ की पिस्तौल उठाकर रामचरण पर निशाना लगाया। पैर में रामचरण के चोट आई। चलने की शक्ति जाती रही। वह बैठ गया।

प्रताप के हाथ में हथियार नहीं था, भगने की भी इच्छा नहीं थी। भगने पर रामचरण की जो दशा हुई थी, उन्होंने देखी थी। प्रताप ने अँगरेज़ों से स्थिरभाव से पूछा, "तुम लोग कौन हो? क्यों आये हो?"

गल्स्टन् ने प्रताप से पूछा, "तुम कौन हो?"

प्रताप ने कहा, "मैं प्रताप राय हूँ।"

यह नाम बक़ाउल्ला को याद था।

बजरे पर हाथ में बन्दूक़ लिये प्रताप ने गर्व से कहा था, "सुनो, मेरा नाम प्रताप राय है।" बक़ाउल्ला ने कहा, "जनाब, यही सरदार है।"

जान्सन् ने प्रताप का एक हाथ पकड़ा, गल्स्टन् ने दूसरा हाथ। प्रताप ने देखा, ज़ोर लगाना व्यर्थ है। चुपचाप सब कुछ सह लिया। नायक के हाथ में हथकड़ी थी, प्रताप के हाथों में डाल दी। गल्स्टन् ने गिरे हुए रामचरण की ओर उँगली उठाकर पूछा—"वह?" जान्सन् ने दो सिपाहियों को आज्ञा दी "उसे भी ले आओ।" दो सिपाही रामचरण को घसीट कर ले चले।

यह शोरग़ुल सुनकर दलनी और कुलसूम जगकर बहुत डरी हुई थीं। दोनों कमरे का दरवाज़ा कुछ खोलकर यह सब देख रही थीं। ज़ीने के पास ही उनका शयन-गृह था।

जब अँगरेज़ प्रताप और रामचरण को लेकर उतर रहे थे तब सिपाही के हाथ के दीये का उजाला एकाएक दराज़ से दलनी की नील मणि जैसी आँखों पर पड़ा। बक़ाउल्ला ने वे आँखें देख लीं। देखते ही कहा, "फ़स्टर साहब की बीबी।"

गल्स्टन् ने पूछा, "सही तो। कहाँ है?"

बक़ाउल्ला ने वह दरवाज़ा दिखाकर कहा, "उस कमरे में।"

जान्सन् और गल्स्टन उस कमरे में गये। दलनी और कुलसूम को देखकर कहा, "तुम लोग हमारे साथ आओ।"

दलनी और कुलसूम बहुत ही घबराई हुई, लुप्तबुद्धि होकर उनके साथ साथ चलीं।

उस घर में अकेली शैवलिनी रही। शेवलिनी ने भी सब कुछ देखा था।

आठवाँ परिच्छेद

पाप की विचित्र गति

जिस तरह यवन-कन्यायें थोड़ा-सा द्वार खोलकर अपने शयन-गृह से देख रही थीं, उसी तरह शैवलिनी भी देख रही थी। तीनों औरतें हैं, इसलिए स्त्री-सुलभ कौतूहल से तीनों पीड़िता थीं। भय से भी तीनों व्याकुल थी। भय का अपना धर्म है कि भयानक वस्तु के दर्शन की बार बार कामना करता है। शैवलिनी ने भी शुरू से आखिर तक देखा था। सबके चले जाने पर घर में अपने को अकेली देखकर पलँग पर बैठी हुई शैवलिनी सोचने लगी।

सोचा, "अब क्या करूँ? अकेली हूँ, इससे मुझे डर क्या? दुनिया में मुझे डर नहीं, मौत से बड़ी विपत् नही। जो हमेशा मौत की कामना करती है, उसे डर किस बात का? क्यों मेरे पास यह मौत नही आती? आत्महत्या बहुत सहल है। सहल भी कैसे है? इतने दिनों तक पानी में रही, पर कहाँ, किसी दिन भी तो डूबकर नहीं मर सकी। रात को जब सब लोग सो जाते थे, धीरे धीरे बाहर नाव पर आकर पानी में कूद पड़ती तो कौन पकड़ता? पकड़ता—नाव पर पहरा रहता था। लेकिन मैंने भी तो कोई कोशिश नहीं की। मरने की इच्छा है, लेकिन मरने को कोई कोशिश नही की। तब भी मेरे आशा थी—आशा के रहते आदमी मर नही सकता। लेकिन

आज ? आज सही सही मरने का दिन है । लेकिन प्रताप को बाँध ले गये हैं। प्रताप को क्या होता है, यह जाने बिना मर नही सकूँगी। प्रताप को क्या होता है ? जो कुछ हो, मेरा क्या ? प्रताप मेरा कौन है ? कौन है, यह नहीं जानती । वह शैवलिनी-पतङ्ग के लिए ज्वलन्त अग्नि है; वह इस संसार-प्रान्तर में मेरे लिए निदाघ की पहली विद्युत् है; वह मेरी मृत्यु है। मैंने क्यों घर छोड़ा, म्लेच्छ के साथ आई ? क्यों सुन्दरी के साथ लौट नहीं गई ?

शैवलिनी अपने माथे पर हाथ मार कर रोने लगी। वेदग्राम का वह घर याद आया। वहाँ चहारदीवारी के किनारे शैवलिनी ने अपने हाथ से कनेर का पौधा लगाया था—उस कनेर की शाखा चहारदीवारी पार करके, लाल लाल फूल धारण किये हुए नीले आकाश की आकांक्षा करके झूमती थी, कभी उस पर भौंरा या छोटी चिड़िया आकर बैठती थी, याद आई। तुलसीमंच, उसके चारों ओर साफ़ बुहारी हुई ज़मीन, घर की पाली हुई बिल्ली, पींजड़े की बोलती चिड़िया, घर की बग़ल में मीठे आमों के ऊँचे पेड़, सब स्मृति-पट पर चित्रित होने लगे। कितना क्या क्या याद आया। कितना सुन्दर, घना नीला, बिना बादलों का आसमान, शैवलिनी छत पर बैठी हुई देखती थी; कितने सुगन्ध, खिले हुए, सफ़ेद फूल, निर्मल जल के छींटे मारकर चन्द्रशेखर की पूजा के लिए पुष्पपात्र में भर देती थी; कितनी स्निग्ध, मन्द सुगन्ध वायु भीमा के किनारे लगती थी; पानी की छोटी छोटी तरङ्गों में स्फटिकों के जैसे कितने विक्षेप देखती थी; उसके किनारे कितनी कोयलें कूकती थीं ! शैवलिनी फिर साँस छोड़कर सोचने लगी। "सोचा था, घर से बाहर होते ही प्रताप को देखूँगी; सोचा था, फिर पुरन्दरपुर की कोठी में लौट जाऊँगी—प्रताप का गृह और पुरन्दरपुर पास पास है, कोठी के झरोखे पर बैठकर कटाक्ष के जाल में प्रताप-पक्षी को पकड़ूँगी, सुभीता होने पर फिरङ्गी को झाँसा देकर भग जाऊँगी, भगकर

प्रताप के पैरों पर गिरूँगी। मैं पिंजड़े की चिड़िया, संसार की गति कुछ भी नहीं जानती थी। नहीं जानती थी कि आदमी गढ़ता है और विधाता तोड़ देता है। नहीं जानती थी कि अँगरेजों का पिंजड़ा लोहे का पिंजड़ा है, मेरी मजाल नहीं कि मैं तोड़ सकूँ। व्यर्थ का कलङ्क मैंने सर लिया। जाति खोई, परलोक बिगाड़ा।" पापिष्ठा शैवलिनी को यह बात याद नही आई कि पाप की निरर्थकता और सार्थकता क्या है। निरर्थकता फिर भी अच्छी है। लेकिन एक दिन वह यह बात समझेगी, एक दिन प्रायश्चित्त के लिए वह अस्थि तक देने को तैयार होगी; वह आशा न रहने पर हम इस पाप-चित्र की अवतारणा ही न करते। बाद को वह सोचने लगी, "परलोक ? वह तो जिस दिन प्रताप को देखा है, उसी दिन चला गया है। जो अन्तर्यामी हैं, उन्होंने उसी दिन मेरे भाग्य में नरक लिखा है। इस लोक में भी मुझे नरक मिला है—मेरा मन ही नरक है—नहीं तो इतना दुःख मुझे क्यों मिला ? नही तो दोनों आँखों की किरकिरी फिरङ्गी के साथ इतने दिनों तक घूमी क्यों ? सिर्फ़ यही नही, जान पड़ता है, जो कुछ भी मेरा अच्छा है, उसी में आग लगती है; जान पड़ता है, मेरे ही लिए प्रताप इस आफ़त में फँसा—मै क्यों नहीं मरी ?"

शैवलिनी फिर रोने लगी। कुछ देर बाद आँखें पोछी; भौंहें टेढ़ी कीं; होंठ काटे; कुछ देर के लिए उसके प्रफुल्ल राजीवतुल्य मुख ने रुष्ट सर्प के फन की भीषण कान्ति धारण की। उसने फिर कहा, "मैं मरी क्यों नहीं ?" शैवलिनी ने एकाएक कमर से एक थैली-सी मोटे सूत की बिनी निकाली; उसके भीतर तेज़ धारवाली एक छुरी थी। शैवलिनी ने छुरी ले ली। म्यान से निकालकर उसके फलक से अँगूठा लगाकर उससे खेलती रही। कहा, "यह छुरी क्या व्यर्थ ग्रहण किया था ? क्यों इतने दिनों तक यह छुरी अपनी छाती में नहीं भोंकी ? क्यों—सिर्फ़ आशा में डूब-

कर। अब ?" यह कहकर शैवलिनी ने छुरी की नोक छाती पर रक्खी। छुरी वैसी ही रही। शैवलिनी सोचने लगी, "एक दिन और छुरी सोते हुए फ्रस्टर के हृदय पर रक्खी थी; उस दिन उसे मारा नहीं; हिम्मत नहीं हुई। आज भी आत्म-हत्या के लिए हिम्मत नहीं हो रही। इस छुरी के भय से उच्छृङ्खल अँगरेज़ भी वशीभूत हुआ था,—वह समझा था कि मेरे कमरे में प्रवेश करने पर, इस छुरी से या तो वह मरेगा, या मैं मरूँगी। उच्छृङ्खल अँगरेज़ इसके भय से वशीभूत हुआ था, लेकिन मेरा यह उच्छृङ्खल हृदय इसके भय से वशीभूत नहीं हुआ। मरूँगी ? नहीं, आज नहीं। मरूँ तो उसी वेदग्राम में जाकर मरूँगी। सुन्दरी से कहूँगी कि मेरे जाति नहीं, कुल नहीं, परन्तु एक पाप से मैं पापिष्ठा नहीं। इसके बाद मरूँगी। और वे—और जो मेरे पति हैं—उनसे क्या कहकर मरूँगी ? बात तो याद नहीं आ रही। याद आने पर, जान पड़ता है, मुझे सैकड़ों हज़ारों बिच्छू डंक मार रहे हैं—नस नस में आग लग जाती है। मैं उनके योग्य नहीं हूँ, इसलिए मैं उन्हें छोड़ आई हूँ। इससे क्या उन्हें कोई क्लेश हुआ है ? क्या उन्होंने दुःख किया है ? नहीं—मैं उनकी कोई नहीं। किताबें ही उनकी सब कुछ हैं। उन्हें मेरे लिए दुःख नहीं होगा। एक बार बड़ी साध होती है, 'उनकी यह बात कोई मुझसे आकर कहे—वे कैसे हैं, क्या कर रहे हैं। उन्हें कभी मैंने प्यार नहीं किया—कभी प्यार नहीं कर सकूँगी, फिर भी उनके मन को अगर कोई क्लेश दिया हो, तो मेरे पाप का भार और भारी हुआ। एक बात और उनसे कहने की साध होती है, परन्तु फ़्रस्टर मर गया है, उस बात का गवाह और कौन है ? मेरी बात पर कौन विश्वास करेगा।

शैवलिनी लेटी। लेटकर वसी ही चिन्ता में अभिभूत हो गई। सुबह उसे नींद आई। नींद में तरह तरह के बुरे स्वप्न देखे। जब

उसकी नींद टूटी, तब दिन चढ़ आया था। खुले झरोखे से कमरे में धूप आ गई थी। शैवलिनी ने आँखें खोलीं। आँखें खोलकर सामने जो कुछ देखा, उससे विस्मित, भीत और स्तम्भित हुई। देखा, चन्द्रशेखर हैं!

———

तृतीय खण्ड

पुण्य का स्पर्श

पहला परिच्छेद

रमानन्द स्वामी

मुङ्गेर के एक मठ में एक परमहंस कुछ दिन से रह रहे थे। उनका नाम था—रमानन्द स्वामी। वे ब्रह्मचारी उनसे विनीत-भाव से बातचीत कर रहे थे। बहुतों का विश्वास था कि रमानन्द स्वामी सिद्ध पुरुष हैं। वे अद्वितीय ज्ञानी अवश्य थे। लोगों का कहना था कि भारत का लुप्त दर्शन-विज्ञान सब वही जानते थे। वे कह रहे थे, "सुनो वत्स चन्द्रशेखर, जो विद्याये तुमने अर्जित की हैं, उनका सावधानी से प्रयोग करना। और कभी सन्ताप को हृदय में जगह न देना; क्योंकि दुःख नाम का कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं। सुख-दुःख बराबर अथवा विज्ञ के निकट एक हैं। अगर भेद करोगे, तो जो लोग पुण्यात्मा अथवा सुखी कहाते हुए प्रसिद्ध है, उन्हें चिरदुःखी कहना होगा।"

यह कहकर रमानन्द ने पहले ययाति, हरिश्चन्द्र, दशरथ आदि प्राचीन राजाओं का कुछ प्रसङ्ग उठाया। श्रीरामचन्द्र, युधिष्ठिर और नल राजाओं का कुछ उल्लेख किया। दिखलाया, सार्वभौम महापुण्यात्मा राजा चिरदुःखी हैं—कदाचित् सुखी हैं। बाद को वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि का कुछ उल्लेख किया। दिखलाया,

वे भी दुःखी हैं । दानव-पीड़ित, अभिशप्त इन्द्रादि देवताओं का उल्लेख किया, दिखलाया, सुरलोक भी दुःखपूर्ण है । अन्त में मनोमोहिनी वाक्शक्ति को देवता की तरह उतार कर अनन्त अपरिज्ञेय विधाता के हृदय तक में अनुसन्धान करने लगे । दिखलाया कि जो सर्वज्ञ हैं, वे इस दुःखमय अनन्त संसार में अनन्त दुःखराशि अनादि अनन्तकाल तक अवश्य अनुभव करते हैं । जो दयामय हैं, क्या वे उस दुःखराशि का अनुभव करके दुखी नहीं होते ? नहीं तो दयामय कैसे ? दुःख के साथ दया का नित्य सम्बन्ध है । दुःख न रहने पर दया का सञ्चार कहाँ है ? जो दयामय हैं, वे अनन्त संसार के अनन्त दुःख में अनन्तकाल तक दुखी हैं । नहीं तो वे दयामय नहीं । अगर कहो, वे निर्विकार हैं, उन्हें क्या दुःख, तो उत्तर यह है कि जो निर्विकार हैं, वे सृष्टि, स्थिति और संहार की इच्छा से रहित हैं—उन्हें स्रष्टा विधाता नहीं मान सकते । यदि कोई स्रष्टा विधाता हों, तो उन्हें निर्विकार नहीं कह सकते । वे दुःखमय हैं । परन्तु वह भी नहीं हो सकता, क्योंकि वे नित्यानन्द हैं । अतएव दुःख की कोई सत्ता नहीं, यही सिद्ध है ।

रमानन्द स्वामी कहने लगे, "और अगर दुःख का अस्तित्व स्वीकार भी करो, तो क्या इस सर्वव्यापी दुःख के निवारण का क्या उपाय नहीं ? उपाय नहीं; परन्तु यदि सब सबके दुःख-निवारण में लगे रहें तो अवश्य निवारण हो सकता है । देखो, विधाता स्वयं सदा सृष्टि के दुःख-निवारण में लगे हैं । संसार को इस दुःख-निवृत्ति से ईश के दुःख का भी निवारण होता है । देवता जीवों के दुःख-निवारण में लगे हैं, इसी से दैव सुख है । नहीं तो इन्द्रियजन्य विकारों से रहित देवताओं के लिए दूसरा सुख नहीं । बाद को ऋषियों की लोकहितैषिता बतलाकर उन्होंने भीष्मादि वीरों की परोपकारिता का वर्णन किया । दिखलाया, जो परोपकारी है, वही

सुखी है, दूसरा कोई सुखी नहीं। तब रमानन्द स्वामी ने शत मुखों से परोपकार-धर्म के गुण गाने शुरू किये। धर्मशास्त्र, वेद, पुराण, इतिहास आदि मथकर भूरि भूरि प्रमाण उपस्थित करने लगे। शब्दसागर का मन्थन कर सैकड़ों महार्थ, श्रुतिमधुर, वाक्यों की परम्परा फूलों की माला की तरह गूँथने लगे। साहित्य-भाण्डार लूटकर सारवती, रसपूर्ण अच्छे अलङ्कारवाली रचनायें विकीर्ण करने लगे। सबके ऊपर अपनी अकृत्रिम धर्मानुराग की मोहमयी प्रतिभावाली छाया फैला दी। उनके कोमल कण्ठ से निकले उच्चारण के कौशल से युक्त वे अपूर्व वाक्य चन्द्रशेखर के कण्ठ में तूर्यनादवत् ध्वनित होने लगे। वे वाक्य कभी मेघगर्जन जैसे गम्भीर शब्द से शब्दित होने लगे, कभी वीणाझङ्कार जैसे मधुर मालूम देने लगे। ब्रह्मचारी विस्मित, मोहित हो गये। उनकी देह रोमाञ्चित होती रही। उन्होंने उठकर रमानन्द स्वामी के पैरों की धूल ली। कहा, "गुरुदेव, आज से मैंने आपके पास यह मन्त्र ग्रहण किया।

रमानन्द स्वामी ने चन्द्रशेखर को आलिङ्गन किया।

दूसरा परिच्छेद

नया परिचय

इधर यथासमय ब्रह्मचारी का दिया पत्र नव्वाब के पास पेश किया गया। नव्वाब को मालूम हुआ कि वहाँ दलनी है। उन्हें और कुलसूम को ले जाने के लिए प्रतापराय के मकान पालकी भेजी गई।

तब धूप चढ़ आई थी। तब उस मकान में शैवलिनी के सिवा और कोई नही था। उसे देखकर नव्वाब के अनुचरों ने उसे बेगम समझा।

शैवलिनी ने सुना, उसे क़िला जाना होगा। एकाएक उसके मन में एक दुरभिसन्धि उपस्थित हुई। कवि आशा और प्रशंसा से मुग्ध होते हैं। सच है कि आशा संसार के अनेक सुखों का कारण है, परन्तु आशा ही दुःख का मूल है। जितने पाप किये जाते हैं, सब लाभ की आशा से। केवल शुभकार्य किसी आशा से नही किये जाते। जो लोग स्वर्ग की आशा से शुभकार्य करते हैं, उनके कार्य को शुभ कार्य नहीं कह सकते। आशा से मुग्ध होकर शैवलिनी ऐतराज़ किये बिना पालकी पर बैठी।

ख़ोजा शैवलिनी को क़िले मे लाकर अन्तःपुर मे नव्वाब के पास ले गया। नव्वाब ने देखा, यह दलनी नहीं। और भी देखा, दलनी भी ऐसी अपूर्व सुन्दरी नही। और भी देखा, ऐसी लोकविमोहिनी उनके अन्तःपुर में कोई नही।

नव्वाब ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

शै०—मैं ब्राह्मण की लड़की हूँ।

न०—तुम क्यों आईं ?

शै०—राजभृत्य मुझे ले आय।

न०—तुम्हें बेगम समझ कर लाये हैं। बेगम क्यों नहीं आईं ?

शै०—वे वहाँ नहीं हैं।

न०—फिर वे कहाँ हैं ?

जब गल्स्टन् और जान्सन् दलनी और कुलसूम को प्रताप के मकान से ले गये थे, तब शैवलिनी ने देखा था। वे कौन थे, यह उसे मालूम नही था। सोचा था, नौकरानियाँ हैं या नर्तकियाँ। परन्तु जब नव्वाब के नौकर ने उससे कहा कि नव्वाब की बेगम प्रताप के घर मे थी और उसे वही बेगम समझकर नव्वाब ने बुला भेजा है,

तभी शैवलिनी समझ गई थी कि बेगम को अँगरेज़ पकड़ ले गये हैं। शैवलिनी सोच रही थी।

नव्वाब ने शैवलिनी को निरुत्तर देखकर पूछा, "तुमने उसे देखा है ?"

शै०—देखा है ।

न०—कहाँ देखा ?

शै०—जहाँ हम लोग कल रात को थे ।

न०—वह कहाँ ? प्रतापराय के घर मे ?

शै०—जी हाँ।

न०—बेगम वहाँ से कहाँ गई हैं, जानती हो ?

शै०—दो अँगरेज़ उन्हें पकड़ कर ले गये हैं।

न०—क्या कहा ?

पहला जवाब शैवलिनी ने दोहराया, नव्वाब चुप रहे। होंठ चबाते हुए दाढ़ी नोचने लगे । गुरगनखाँ को बुलाने का हुक्म दिया। शैवलिनी से पूछा, "क्यों अँगरेज़ बेगम को पकड़ ले गये, जानती हो ?"

शै०—नहीं ।

न०—प्रताप तब कहाँ था ?

शै०—उन्हें भी वे लोग साथ साथ पकड़ ले गये है।

न०—उसके घर में और कोई आदमी था ?

शै०—एक नौकर था, उसे भी पकड़ ले गये हैं ।

नव्वाब ने फिर पूछा, "क्यों उन्हें पकड़ ले गये हैं, जानती हो ?

शैवलिनी अब तक सच बोल रही थी, अब झूठ शुरू की। कहा, "नहीं।"

न०—प्रताप कौन है ? उसका मकान कहाँ है ?

शैवलिनी ने प्रताप का सच्चा परिचय दिया।

न०—यहाँ किसलिए आये थे !

शै०—सरकार के यहाँ नौकरी करने के लिए ।

न०—तुम्हारे कौन होते हैं ?

शै०—मेरे पति हैं ।

न०—तुम्हारा नाम क्या है ?

शै०—रूपसी ।

बिना हिचक के शैवलिनी ने यह जवाब दिया । पापिष्ठा यही बात कहने के लिए आई थी ।

नव्वाब ने कहा, "अच्छा, तुम इस समय घर जाओ ।"

शैवलिनी ने कहा, "मेरा घर कहाँ है, कहाँ जाऊँगी ?"

नव्वाब चुप हो गये, दूसरे क्षण कहा, "तो तुम कहाँ जाओगी ?"

शै०—अपने पति के पास । मेरे पति के पास मुझे भेज दीजिए। आप राजा हैं, आपसे मेरी अर्ज़ है—मेरे पति को अँगरेज़ पकड़ ले गये हैं, या तो मेरे पति को मुक्त करा दीजिए या मुझे उनके पास भेज दीजिए; अगर आप अवज्ञा से इसका उपाय नहीं करेंग तो यहीं आपके सामने मैं मरूँगी, इसी लिए यहाँ आई हूँ ।

ख़बर आई, गुरगनख़ाँ हाज़िर हैं । नव्वाब ने शैवलिनी से कहा, "अच्छा तुम यही इन्तज़ार करो, हम अभी आते हैं ।"

तीसरा परिच्छेद

नया शौक़

नव्वाब ने गुरगनख़ाँ से दूसरी दूसरी ख़बरें पूछकर कहा, "अँगरेज़ों से जङ्ग करने में ही भलाई मालूम देती है । मेरी राय में छेड़ से

पहले अमियट को क़ैद करना चाहिए, क्योंकि अमियट मेरा जानी दुश्मन है। तुम्हारी क्या राय है ?"

गुरगनखाँ ने कहा, "जङ्ग के लिए मैं हर वक्त तैयार हूँ। लेकिन दूत पर हाथ नही उठाना चाहिए। दूत को तकलीफ़ पहुँचाने पर हम दग़ाबाज़ क़रार दिये जायँगे, हमारी बदनामी होगी और--

नव्वाब--कल रात को इसी शहर में अमियट ने एक आदमी के डेरे पर चढ़ाई की और वहाँ के लोगों को पकड़ ले गया है। मेरी सल्तनत में जो क़ुसूर करता है, दूत होने पर भी क्या उसे सज़ा नहीं दी जानी चाहिए ?

गुर०--अगर उसने ऐसा किया हो तो उसे सज़ा मिलनी चाहिए। लेकिन उसे हम गिरफ़्तार किस तरह करें ?

नव्वाब--इसी वक्त उसके डेरे पर तोपों के साथ सिपाही भेज दो। उसे उसके आदमियों के साथ पकड़ लायें।

गुर०--वे इस शहर में नही हैं। आज दुपहर को चले गये हैं।

नव्वाब--कैसे ? बग़ैर इत्तिला के ?

गुर०--इत्तिला के लिए हेनाम के एक आदमी को छोड़ गये हैं।

नव्वाब--इस तरह एकाएक बग़ैर इत्तिला के भगने की क्या वजह है ? इस तरह, मेरी शान के खिलाफ़, बेअदबी की गई है और जानबूझकर की गई है।

गुर०--उनकी हथियारवाली नाव के अँगरेज़ का कल रात किसी ने खून किया है। अमियट कहता है, हमारे आदमियों ने खून किया है। इसी से नाराज़ होकर चले गये हैं। अमियट का कहना है, यहाँ जान का खतरा है।

नव्वाब--किसने खून किया है, तुमने सुना है ?

गुर०--प्रतापराय नाम के एक आदमी ने।

नव्वाब—खूब किया है। वह मिलेगा तो उसे इनाम देंगे। प्रतापराय कहाँ है ?

गुर०—उन सबको बाँधकर अँगरेज लोग साथ ले गये हैं। साथ ले गये हैं या अज़ीमाबाद भेजा है, सही खबर नहीं मालूम हुई।

नव्वाब—अब तक ये ख़बरे हमें क्यों नही सुनाई गईं ?

गुर०—मुझे अभी अभी मालूम हुई है।

यह झूठ बात है। गुरगनखाँ शुरू से आखिर तक सब जानते थे। उनकी मर्ज़ी के खिलाफ़ अमियट हरगिज मुङ्गेर नही छोड़ सकते थे। लेकिन गुरगनखाँ के दो मतलब थे; पहला, दलनी मुङ्गेर से बाहर हो जाय तो अच्छा है, दूसरा, अमियट का ज़रा हाथ में रहना अच्छा है; भविष्य में उससे उपकार हो सकता है।

नव्वाब ने गुरगनखाँ को बिदा किया। जब गुरगनखाँ चले, नव्वाब ने उन पर टेढ़ी निगाह डाली। उस निगाह का मतलब यह है—"जब तक लड़ाई खत्म नहीं होती तब तक तुमसे कुछ नहीं बोलेंगे—जङ्ग में तुम हमारे सबसे बड़े हथियार हो। इसके बाद दलनी बेगम का क़र्ज़ तुम्हारे खून से चुकाया जायगा।"

इसके बाद मीर मुन्शी को बुलाकर नव्वाब ने यह आदेश जारी किया—"महम्मद तक़ी खाँ के नाम मुर्शिदाबाद यह परवाना भेजो कि अमियट की नाव जब मुर्शिदाबाद पहुँचे तब अमियट पकड़कर क़ैद कर लिया जाय और उसके साथ के क़ैदी रिहा करके सरकार में भेज दिये जायँ। खुल्लमखुल्ला लड़ाई न करके धोखे से पकड़ा जाय, यह भी लिख दो। परवाना घोड़सवार के हाथ भेजा जाय, जल्दी पहुँचेगा।"

नव्वाब महल के अन्दर गये और फिर शैवलिनी को बुलवाया। कहा, इस वक़्त तुम्हारे खाविन्द की रिहाई नही हो सकी। अँगरेज़ उसे लेकर कलकत्ते की तरफ़ रवाना हो गये हैं। मुर्शिदाबाद हुक्म भेजा गया है, वहाँ ये लोग पकड़े जायँगे। तुम इस वक़्त—"

हाथ जोड़कर शैवलिनी ने कहा, "वाचाल स्त्री को क्षमा करें। इस समय आदमी भेजने पर क्या पकड़ा नही जा सकता ?"

नव्वाब—अँगरेज़ों को पकड़ना थोड़े आदमियों का काम नही। हथियारबन्द ज़्यादा आदमी भेजे जायँगे तो बड़ी नाव चाहिए। पकड़ते-पकड़ते वे लोग मुर्शिदाबाद पहुँचेंगे। लड़ाई की तैयारियाँ देखकर, नहीं कहा जा सकता, अँगरेज़ क़ैदियों की जान ले सकते हैं। मुर्शिदाबाद में होशियार कारगुजार हैं, वे चालाकी से पकड़ लेंगे।

शैवलिनी समझी कि उसके सुन्दर मुँह से बड़ा उपकार हुआ है। नव्वाब ने उसका सुन्दर मुँह देखकर उसकी सब बातों पर विश्वास और उसके प्रति दया की है, नही तो इतनी बाते समझा कर क्यों कहेंगे ? शैवलिनी को हिम्मत बँधी, उसने फिर हाथ जोड़े। कहा, यदि इस अनाथ पर इतनी दया की है तो एक और भीख है—क्षमा कीजिए। मेरे पति का उद्धार बहुत सीधा है—वे खुद वीर हैं। उनके हाथ हथियार रहने पर उन्हें अँगरेज़ क़ैद नही कर सकते थे। इस समय भी यदि उन्हें हथियार मिले तो उन्हें कोई क़ैद में नहीं रख सकता; अगर कोई उन्हें हथियार दे आ सके तो वे स्वयं मुक्त हो सकते हैं और साथियों को भी मुक्त कर सकते हैं।"

नव्वाब हँसे। कहा, "तुम लड़की हो, अँगरेज़ क्या हैं, यह नहीं जानती। अँगरेज़ों की उस नाव पर चढ़कर कौन उसे हथियार दे आयेगा ?"

सर झुकाकर धीमी आवाज़ में शैवलिनी ने कहा, "यदि आज्ञा हो, यदि नाव मिले तो मैं ही जाऊँ।"

नव्वाब खुलकर हँसे। हँसी सुनकर शैवलिनी ने भौंहें टेढ़ी कीं। कहा, "प्रभु ! न बन पड़ेगा तो मेरी ही जान जायगी, इसमें किसी की क्षति नहीं, परन्तु यदि बन पड़ा तो मेरा भी काम होगा और आपका भी काम होगा।"

शैवलिनी का टेढ़ी भौहोंवाला मुँह देखकर नव्वाब समझे, यह

मामूली औरत नहीं। सोचा, मरती है तो मरे, इसमें मेरा क्या नुक़सान ? अगर काम पूरा करे तो अच्छा है, नहीं तो मुर्शिदाबाद मे महम्मद तक़ीखाँ है ही, वह करेगा। शैवलिनी से पूछा, "क्या तुम अकेली जाओगी ?"

शै०—स्त्री हूँ, अकेली नहीं जा सकूँगी। यदि दया करें तो साथ एक दासी और एक रखवाले के लिए आज्ञा कर दें।

सोचकर नव्वाब ने मसीबुद्दीन नाम के एक विश्वासी, बली और साहसी खोजा को बुलवाया। आकर उसने कोर्निश की। उससे नव्वाब ने कहा, "इस औरत को साथ लो और एक हिन्दू बाँदी साथ लो। ये जो जो हथियार लेने के लिए कहें, वे भी लो। नाव के दारोग़ा से एक तेज़ चलनेवाली किश्ती लो। यह सब लेकर इसी वक़्त मुर्शिदाबाद रवाना हो जाओ।"

मसीबुद्दीन ने पूछा, "कौन-सा काम करना होगा ?"

नव्वाब—ये जो कुछ फ़र्मायेंगी वही करना होगा। बेगमों की जैसा इनकी इज़्ज़त करना। अगर दलनी बेगम से मुलाक़ात हो तो साथ ले आना।

बाद को दोनों क़ायदे के अनुसार नव्वाब को अभिवादन करके चले। खोजा ने जैसा किया, शैवलिनी देख देखकर उसी तरह मिट्टी छूती पीछे हटती हुई आदाब बजा लाई। नव्वाब हँसे।

चलते समय नव्वाब ने कहा, "बीबी, याद रखना, कभी कोई मुश्किल गुज़रे तो मोरक़ासिम के पास आना।"

शैवलिनी ने फिर कोर्निश की। मन में कहा, "ज़रूर आऊँगी! मुमकिन, रूपसी के साथ पति को लेकर निवेदन करने के लिए तुम्हारे पास आऊँ।" मसीबुद्दीन ने दासी और नाव ठीक की और शैवलिनी के कहने के अनुसार बन्दूक़, गोलियाँ, बारूद, पिस्तौल, तलवार और छुरे ले लिये। मसीबुद्दीन हिम्मत करके

पूछ नहीं सका कि यह सब क्या होगा। मन ही मन कहा, यह दूसरी चाँद सुलताना है।

उसी रात को नाव पर चढ़कर वे लोग रवाना हो गये।

चौथा परिच्छेद

रोती है

चाँदनी निकल आई है। गङ्गा के दोनों तरफ़ बहुत दूर तक फैली रेती है। चाँदनी से बालू और सफ़ेद हो गई है। गङ्गा का पानी चाँदनी से गहरे नीले रङ्ग का दिखलाई पड़ता है। गङ्गा का पानी घना-नीला, किनारे के वन घने-काले, ऊपर का आकाश रत्नखचित नीला। ऐसे समय विस्तार के ज्ञान से मन कभी कभी चञ्चल हो उठता है। नदी अनन्त है, जितनी दूर देख रहा हूँ, नदी का अन्त नहीं देख पा रहा, मनुष्य के अदृष्ट की तरह धुँधला दिखनेवाले भविष्य में मिल रही है। नीचे नदी अनन्त, बग़ल में बालुका-भूमि अनन्त, किनारे पेड़ों की क़तारें अनन्त, ऊपर आकाश अनन्त, उसमें तारे असंख्य। ऐसे समय कौन मनुष्य अपनी गिनती करता है? यह जिस नदी के किनारे बालुकाभूमि में नावों की श्रेणियाँ बँधी हुई हैं, उसकी बालू के कण से बढ़कर आदमी का कौन-सा गौरव है?

नावों की इन क़तारों में एक बड़ा बजरा है—उस पर सिपाहियों का पहरा है। दोनों सिपाही गढ़ी मूर्तियों की तरह कन्धे पर बन्दूक़ रक्खे स्थिरभाव से खड़े हैं। भीतर स्निग्ध स्फटिक दीप के प्रकाश में तरह-तरह के क़ीमती आसन, बिस्तरे, तसवीरें, खिलौने आदि शोभा दे रहे हैं। भीतर कुछ साहब हैं। दो आदमी शतरञ्ज

खेल रहे हैं। एक शराब पी रहा है और पढ़ रहा है। एक बाजा बजा रहा है।

एकाएक सब चौक उठे। रात को उस नीरवता को भेद कर एकाएक रोने की एक विकट आवाज़ सुनाई दी।

अमियट साहब ने जान्सन् के खिलाफ़ किस्त देते देते कहा, "यह क्या है ?"

जान्सन् ने कहा, "किसी को किस्त मात हुई।"

रोना और विकट हुआ। आवाज़ विकट नहीं, परन्तु उस जल-भूमि के नीरव प्रान्तर में यह रात का रोना विकट सुनाई देने लगा।

अमियट खेल छोड़कर उठे। बाहर आकर चारों तरफ़ देखा। किसी को नहीं देखा। देखा, पास कहीं मरघट नहीं। रेती के बीच से आवाज़ आ रही है।

अमियट नाव से उतरे। आवाज़ के सीधे चले। कुछ दूर चलकर देखा, बालू के उस प्रान्तर में अकेली कोई बैठी है।

अमियट पास गये। देखा, एक स्त्री ऊँचे स्वर से रो रही है।

अमियट अच्छी हिन्दी नहीं जानते थे। स्त्री से पूछा, "तुम कौन हो, क्यों रो रही हो ?"

स्त्री उनकी हिन्दी कुछ नहीं समझ सकी। केवल ऊँचे स्वर से रोती रही। अमियट ने, किसी दफ़ा उसकी बात का कोई उत्तर न पाकर, हाथ के इशारे उसे साथ चलने के लिए कहा। स्त्री उठी। अमियट आगे बढ़े। स्त्री उनके साथ साथ रोती हुई चली। यह और कोई नहीं, पापिष्ठा शैवलिनी है।

पाँचवाँ परिच्छेद

हँसती है

बजरे के भीतर आकर, अमियट ने गल्स्टन् से कहा, "यह स्त्री अकेली रेती पर बैठी हुई रो रही थी। यह मेरी बात नहीं समझती। तुम इससे पूछ-ताछ करो।"

गल्स्टन् भी करीब-करीब अमियट जैसे पण्डित थे, परन्तु अँगरेजों में हिन्दी के सम्बन्ध में उनका बड़ा नाम है। गल्स्टन् ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

शैवलिनी बोली नहीं—रोने लगी।

ग०—क्यों रो रही हो?

शैवलिनी ने फिर भी बातचीत नहीं की—सिर्फ रोती रही।

ग०—तुम्हारा मकान कहाँ है?

शैवलिनी—पहले की तरह।

ग०—तुम यहाँ क्यों आई हो?

शैवलिनी—पहले की तरह।

गल्स्टन् हार गये। किसी बात का जवाब नहीं दिया देखकर अँगरेजों ने शैवलिनी को विदा किया। शैवलिनी यह बात भी नहीं समझी, हिली नहीं, खड़ी रही।

अमियट ने कहा, "यह हम लोगों की बात नहीं समझती—हम इसकी नहीं समझते। पहनावे से मालूम देता है, यह बङ्गालिन है। एक बङ्गाली बुलाकर इससे पूछ-ताछ करने के लिए कहो।"

साहबों के खानसामा प्रायः सभी बङ्गाली मुसलमान हैं। अमियट ने उनमें एक को बुलाकर बातचीत करने के लिए कहा।

खानसामा ने पूछा, "क्यों रो रही हो?"

शैवलिनी पागल की हँसी हँसी। खानसामा ने साहबो से कहा, पागल है।

साहबों ने कहा, "इससे पूछो, क्या चाहती है?"

खानसामा ने पूछा; शैवलिनी ने कहा, "भूख लगी है।"

खानसामा ने साहबों को समझा दिया। अमियट ने कहा, "उसे कुछ खाने को दो।"

खानसामा बड़े हर्ष से शैवलिनी को बावर्चीखानेवाली नाव पर ले गया। हर्ष से, क्योंकि, शैवलिनी बड़ी सुन्दरी है। शैवलिनी ने कुछ नहीं खाया। खानसामा ने कहा, "खाओ।" शैवलिनी ने कहा, "ब्राह्मण की लड़की हूँ, तुम्हारा छुआ कैसे खाऊँगी?"

खानसामा ने लौटकर साहबो से यह बात कही। अमियट साहब ने पूछा, "किसी नाव पर कोई ब्राह्मण नहीं?"

खानसामा ने कहा "एक सिपाही ब्राह्मण है, और एक कैदी ब्राह्मण है।"

साहब ने कहा, "अगर किसी के भात हो, तो देने के लिए कहो।"

खानसामा शैवलिनी को लेकर पहले सिपाहियो के पास गया। सिपाहियों के पास कुछ भी नहीं था। तब, जिस नाव पर वह कैदी ब्राह्मण था, खानसामा शैवलिनी को उस नाव पर ले गया।

कैदी ब्राह्मण प्रतापराय है। एक छोटी किश्ती पर, अकेले प्रताप। बाहर, आगे, पीछे सिपाहियो का पहरा। नाव के भीतर अँधेरा।

खानसामा ने कहा, "ऐ महाराज!"

प्रताप ने आवाज़ दी, "क्या है?"

खा०—तुम्हारी हण्डी में भात है?

प्र०—क्यो?

खा०—एक ब्राह्मण की लड़की भूखी है, थोड़ा-सा दे सकते हो?

प्रताप के भी भात नहीं था। परन्तु प्रताप ने अस्वीकार नहीं

किया, कहा, "दे सकता हूँ। मेरे हाथों को हथकड़ियाँ खोल देने के लिए कहो।"

खानसामा ने सिपाही से प्रताप को हथकड़ियाँ खोल देने के लिए कहा। सिपाही ने कहा, "हुक्म दिलाओ।"

खानसामा हुक्म दिलाने के लिए गया। दूसरे के लिए इतनी परेशानी कौन उठाता है? खासतौर से साहब का खानसामा, पीरबख्श कभी इच्छापूर्वक दूसरे का उपकार नहीं करता। पृथ्वी में जितने तरह के आदमी हैं, अँगरेज़ों के मुसलमान खानसामा सबमें निकृष्ट हैं। परन्तु यहाँ पीरबख्श का कुछ स्वार्थ था। उसने सोचा था, इस स्त्री का खाना-पीना हो जाने पर इसे एक दफ़ा खानसामों के बीच ले जाकर बैठाऊँगा। पीरबख्श शैवलिनी को भोजन कराकर अपने वश करने को उतावला हुआ। प्रताप की नाव पर शैवलिनी बाहर खड़ी रही। खानसामा हुक्म दिलाने के लिए अमियट साहब के पास गया। शैवलिनी घूँघट काढ़े खड़ी रही।

सुन्दर मुँह की सब जगह जय है। खास तौर से सुन्दर मुँह की अधिकारिणी अगर युवती स्त्री हो तो वह अमोघ अस्त्र है। अमियट ने देखा था, यह "जेन्टू" स्त्री निरुपमा सुन्दरी है, इस पर, वह पागल है, यह मालूम कर उसे कुछ दया भी हुई थी। अमियट ने जमादार से प्रताप की हथकड़ियाँ खोल देने और शैवलिनी को प्रताप की नाव के भीतर जाने की अनुमति भेज दी।

खानसामा बत्ती ले आया। सिपाही ने प्रताप की हथकड़ियाँ खोल दीं। खानसामा को उस नाव पर आने के लिए मनाकर प्रताप बत्ती लेकर झूठमूठ भात निकालने बैठे। मतलब भगना था।

शैवलिनी नाव के भीतर गई। सिपाही खड़े हुए पहरा दे रहे थे, नाव के भीतर देख नहीं पा रहे थे। शैवलिनी भीतर पैठकर प्रताप के सामने पहुँचकर घूँघट खोलकर बैठी।

प्रताप का विस्मय दूर होने पर उन्होंने देखा, शैवलिनी होंठ

चबा रही है, चेहरा हल्की मुस्कुराहट से प्रफुल्ल है, उस पर स्थिर प्रतिज्ञा का चिह्न है। प्रताप मान गये, यह सही सही बाघ के योग्य बाघिन है।

शैवलिनी ने बहुत धीमे स्वर से कान में कहा, "हाथ धोओ—मैं क्या भात की कङ्गाल हूँ?"

प्रताप ने हाथ धोया। इसी समय शैवलिनी ने कान मे कहा, "अब भगो। मोड़ के आगे जो किश्ती है, वह तुम्हारे लिए है।"

प्रताप ने उसी स्वर से कहा, "तुम पहले जाओ, नही तो तुम पर विपत्ति आयेगी।"

शै०—यही समय है, भगो। हथकड़ियाँ पड़ जाने पर फिर भग नही सकोगे। इसी वक़्त पानी में कूदो। देर न करो। एक दिन मेरी बुद्धि से चलो, मैं पागल हूँ, पानी में कूद पड़ूँगी। तुम मुझे बचाने के लिए पानी में कूदना।

यह कहकर शैवलिनी खिलखिलाकर हँसी। हँसती हुई बोली, "मैं भात नही खाऊँगी।" उसी वक़्त रोती हुई बाहर निकल कर, फिर बोली, मुझे मुसलमान का भात खिला दिया, मेरी जात गई, माता गङ्गा। तुम्ही मुझे सँभालो।" यह कहकर शैवलिनी गङ्गा के स्रोत पर कूद पड़ी।

"क्या हुआ? क्या हुआ?" ऊँचे स्वर से कहते हुए प्रताप नाव पर बाहर निकल आये। सिपाही सामने खड़ा, रोकने चला। "हरामज़ादे! औरत डूब कर जान दे रही है और तुम खड़े खड़े देख रहे हो?" यह कहकर प्रताप ने सिपाही को एक लात मारी। उसी एक लात से सिपाही नाव से गिर गया। किनारे की तरफ़ सिपाही गिरा। "औरत को बचाओ" कहकर प्रताप दूसरी तरफ़ पानी में कूदे। कुशल तैराक शैवलिनी आगे आगे पानी काटती हुई चली। प्रताप उसके पीछे पीछे चले।

"क़ैदी भगा" कहकर पीछे के सिपाही ने आवाज़ लगाई और

प्रताप के सीधे बन्दूक का निशाना साधा। उस समय प्रताप तैर रहे थे।

प्रताप ने पुकार कर कहा, "डरो मत, मैं भगा नहीं—इस स्त्री को निकालूँगा, सामने स्त्री-हत्या किस तरह देखूँ? तू बेटा हिन्दू है—समझकर ब्रह्म-हत्या करना।"

सिपाही ने बन्दूक झुकाई।

इस समय शैवलिनी सबसे आख़िरी नाव के पास से तैरती जा रही थी। उस नाव को देखकर शैवलिनी एकाएक चौंक उठी; देखा, जिस नाव पर शैवलिनी लारेन्स फस्टर के साथ रह चुकी थी, यह वही नाव है।

काँपकर शैवलिनी ने कुछ देर तक उस नाव को देखा। देखा, उसकी छत पर, चाँदनी में छोटे से पलँग पर एक साहब अधलेटी हालत में पड़ा है। उजली चाँदनी उसके मुँह पर पड़ रही है। शैवलिनी चीख़ उठी—देखा, लारेन्स फस्टर पलँग पर लेटा है।

लारेन्स फस्टर ने भी तैरनेवाली पर निगाह डालते हुए पहचाना कि शैवलिनी है। लारेन्स फस्टर भी चीख उठा, कहा, "पकड़ो, पकड़ो, हमारी बीबी है।" फस्टर दुबला, रोगी, कमज़ोर और चारपाई पर लगा, उठने की शक्ति से रहित था।

फस्टर की आवाज सुनकर चार-पाँच आदमी शैवलिनी को पकड़ने के लिए पानी में कूद पड़े। प्रताप उस समय उनके बहुत आगे थे। वे प्रताप को पुकारकर कहने लगे, "पकड़ो, पकड़ो, फ़स्टर साहब इनाम देंगे।" प्रताप ने मन-ही-मन कहा, "फ़स्टर साहब को मैंने इनाम दिया है—इच्छा है, और एक बार दूँगा।" खुलकर आवाज़ दी—"मैं पकड़ रहा हूँ, तुम लोग किनारे चढ़ो।"

इस बात पर विश्वास करके सब लोग लौटे। फ़स्टर नहीं समझा कि आगेवाला आदमी प्रताप है। फ़स्टर का मस्तिष्क तब तक नीरोग नहीं हुआ।

छठा परिच्छेद

अगाध पानी में तैरना

दोनों तैरकर बहुत दूर गये। कितना मनोहर दृश्य! कितने सुख के समुद्र की तैराई! इस, अनन्त देश को व्याप्त करनेवाली, विशाल-हृदया, छोटी छोटी तरङ्गों को, नीलिमामयी तटिनी के हृदय पर, चाँदनी के सागर में उतराते-उतराते दोनों ने ऊपर के अनन्तनील समुद्र को देखा। तब प्रताप ने सोचा, मनुष्य के अदृष्ट में उस समुद्र में तैरना क्यों नहीं? क्यों मनुष्य मेघों की उन तरङ्गों को नहीं तोड़ सकता? कौन-सा पुण्य करने पर उस समुद्र में तैरनेवाला जीव हो सकता हूँ? तैरना क्या मामूली बात है; छोटी-सी पार्थिव नदी का तैरना? पैदा होने के वक्त से इस दुरन्त काल-समुद्र में तैर रहा हूँ, तरङ्ग को रेल कर तरङ्ग पर डाल रहा हूँ—तृण की तरह तरङ्ग तरङ्ग पर फिर रहा हूँ—फिर तैरना क्या? शैवलिनी ने सोचा, इस पानी का तो तल है, मैं तो अतल जल में बह रही हूँ!

तुम परवा करो या न करो, लेकिन जड़ प्रकृति तो नहीं छोड़ती—सौन्दर्य तो छिपा नहीं रहता। तुम जिस समुद्र में भी तैरो, जल-नीलिमा की मधुरता विकृत नहीं होती—छोटी तरङ्गों की माला नहीं टूटती, वे जैसा झुलसती हैं, किनारे पेड़ उसी तरह झूमते हैं, पानी में चाँदनी उसी तरह खेलती है। जड़ प्रकृति का अत्याचार? स्नेहमयी माता की तरह वह सब समय आदर करना चाहती है।

यह सब केवल प्रताप की आँखों में, शैवलिनी की आँखों में नहीं। शैवलिनी ने नाव पर जो रुग्ण शीर्ण श्वेत मुँह देखा था, केवल वही उसके मन में जग रहा था। शैवलिनी कल की पुतली की तरह तैर रही थी। थकावट नहीं, दोनों सन्तरण-कुशल। तैरने में प्रताप का आनन्द-सागर उद्वेल था।

प्रताप ने पुकारा, "शैवलिनी—शै !"

शैवलिनी चौंक उठी। हृदय काँप उठा। बचपन में प्रताप उसे "शै" या "सइ" कहकर पुकारता था। फिर वही प्रिय सम्बोधन किया। कितने दिन बाद ! वर्ष से क्या काल को नाप होती है ? भाव और अभाव से काल को नाप ! शैवलिनी ने जितने वर्षों से 'सइ' शब्द नहीं सुना, शैवलिनी का वह एक मन्वन्तर है। अब सुनकर शैवलिनी ने उस अनन्त जलराशि में आँखें मूँद लीं। मन-ही-मन चन्द्र-ताराओं को साक्षी माना। आँखें मूँदकर बोली, "प्रताप ! आज भी इस सूखी गङ्गा पर चाँदनी क्यों पड़ रही है ?"

प्रताप ने कहा, "चाँदनी ? नहीं। सूरज निकल आया है—शै ! अब डर नहीं; कोई पीछे लगा नहीं आ रहा।"

शै०—तो चलो, किनारे चढ़ें।

प्र०—शै !

शै०—क्या ?

प्र०—याद है ?

शै०—क्या ?

प्र०—एक दिन और इसी तरह तैरे थे।

शैवलिनी ने जवाब नहीं दिया। लकड़ी का एक बड़ा टुकड़ा बहा जा रहा था, शैवलिनी ने उसे पकड़ा। प्रताप से कहा, "पकड़ो, भार सँभल जायगा। सुस्ता लो।" प्रताप ने लकड़ी पकड़ी। पूछा, "याद है ? तुम डूब नहीं सकीं, मैं डूबा।" शैवलिनी ने कहा, "याद है। तुम अगर फिर वह नाम लेकर न पुकारते तो आज उसका बदला चुकाती। क्यों पुकारा ?"

प्र०—तो याद है—मैं मन में लाऊँ तो डूब सकता हूँ ?

शैवलिनी ने शङ्कित होकर कहा, "क्यों प्रताप, चलो, किनारे चढ़ें।"

प्र०—मैं नहीं चढ़ूँगा, मैं आज मरूँगा।

प्रताप ने लकड़ी छोड़ दी।

शै०—क्यों प्रताप ?

प्र०—तमाशा नहीं—ज़रूर डूबूँगा—तुम्हारा हाथ—

शै०—क्या चाहते हो प्रताप ? जो कहोगे वही करूँगी।

प्र०—एक क़सम खाओ, तब किनारे चलूँगा।

शै०—कौन-सी क़सम प्रताप ?

शैवलिनी ने लकड़ी छोड़ दी। उसकी दृष्टि में तारे मलिन पड़ गये, चाँद पिङ्गल हो गया। नदी का पानी नीली आग की तरह जलने लगा। जैसे फ़ास्टर सामन आकर तलवार निकालकर खड़ा हुआ। साँस रोककर शैवलिनी ने पूछा, "कौन-सी क़सम प्रताप ?"

दोनों बग़ल-बग़ल, लकड़ी छोड़कर तैर रहे थे। गङ्गा के कल-कल छल-छल जल-भङ्ग-रव में यह भयङ्कर बातचीत चल रही थी। चारों ओर उठते-गिरते जल के कणों म चाँद हँस रहा था। जड़ प्रकृति का अत्याचार !

"कौन-सी क़सम प्रताप ?"

प्र०—गङ्गा के इस जल पर—

शै०—मेरे पास गङ्गा क्या है ?

प्र०—तो धर्म को साक्षी करके कहो—

शै०—मेरे धर्म भी कहाँ ?

प्र०—तो मेरी क़सम ?

शै०—पास आओ—हाथ दो।

प्रताप ने पास पहुँचकर बहुत दिनों बाद शैवलिनी का हाथ पकड़ा। दोनों का तैरना मुश्किल हो गया। फिर दोनों ने लकड़ी पकड़ी।

शैवलिनी ने कहा, "अब जो बात कहो, क़सम खाकर कह सकती हूँ—इतने दिनों बाद प्रताप ?"

प्र०—मेरी क़सम खाओ, नहीं तो डूबूँगा। प्राण किसलिए? पापी-जीवन का भार कौन इच्छापूर्वक ढोना चाहता है? चाँद के प्रकाश में इस निश्चित गङ्गा में यदि यह भार उतार सकूँ तो इससे बढ़कर दूसरा सुख क्या है?

ऊपर चाँद हँस रहा था।

शैवलिनी ने कहा, "तुम्हारी क़सम, क्या कहूँ?"

प्र०—क़सम खाओ—मुझे छूकर क़सम खाओ—मेरे मरने-बचने और शुभाशुभ के लिए तुम उत्तरदायी हो।

शै०—तुम्हारी क़सम—तुम जो कुछ कहोगे, इस जन्म में वही मेरे लिए निश्चित है।

प्रताप ने क़सम की बड़ी भयानक बात कही। जो क़सम शैवलिनी के लिए बहुत ही मुश्किल, बहुत ही रूखी है, उसका मानना असाध्य है, जान लेनेवाला है। शैवलिनी ने कहा, "इस संसार में मेरी जैसी दुखिया कौन है, प्रताप?"

प्र०—मैं।

शै०—तुम्हारे ऐश्वर्य है—बल है—कीर्ति है—मित्र हैं—भरोसा है, रूपसी है—मेरे क्या है, प्रताप?

प्र०—कुछ नहीं, आओ, तो दोनों डूबें।

शैवलिनी ने कुछ देर तक सोचा। सोचने का यह फल हुआ कि उसकी जीवन-नदी में पहले-पहल उलटी तरङ्ग उठी। "मैं मरूँ, इसमें क्या क्षति है? परन्तु मेरे कारण प्रताप क्यों जान गँवाये?" खुलकर कहा, "किनारे चलो।"

सहारा छोड़कर प्रताप डूबा।

उस समय भी प्रताप के हाथ में शैवलिनी का हाथ था, शैवलिनी ने खींचा, प्रताप ऊपर आया।

शै०—मैं क़सम खाऊँगी। परन्तु तुम एक दफ़ा सोचकर

देखो। मेरा सर्वस्व छीने ले रहे हो। मैं तुम्हें नहीं चाहती। परन्तु तुम्हारी याद क्यों छोड़ूँगी?

प्रताप ने हाथ छोड़ दिया। शैवलिनी ने फिर पकड़ा। तब बहुत गम्भीर, साफ सुन पड़नेवाला, अथच बाष्प-विकृत स्वर से शैवलिनी बातचीत करने लगी, कहा, "प्रताप, हाथ दबाकर पकड़ो; प्रताप, सुनो, तुम्हें छूकर कसम खा रही हूँ—तुम्हारा मरना-बचना और शुभाशुभ मेरे जिम्मे। सुनो, तुम्हारी कसम, आज मैं तुम्हें भूलूँगी। आज से ही मेरे कुल सुखों की इति है। आज मैं मैं मन का दमन करूंगी। आज से शैवलिनी मरी।

शैवलिनी ने प्रताप का हाथ छोड़ दिया—लकड़ी छोड़ दी।

गद्गद-कण्ठ से प्रताप ने कहा, "चलो, किनारे चलें।"

दोनों किनारे पर जाकर चढ़े।

पैदल चलकर मोड़ घूमे। किश्ती पास थी, दोनों उस पर चढ़े और किश्ती खोल दी। दोनों में कोई जानता नहीं था कि रमानन्द स्वामी उन्हें विशेष मनोयोग से देख रहे हैं।

इधर अँगरेजों के आदमियों ने सोचा, कैदी भगा। उन लोगों ने पीछा किया, परन्तु किश्ती जल्द अदृश्य हो गई।

रूपसी के विरुद्ध मुक़दमे की अर्जी पेश होते-न-होते शैवलिनी की हार हुई।

सातवाँ परिच्छेद

रामचरण की मुक्ति

प्रताप जब भगा तब रामचरण की मुक्ति सहज हो हो गई। रामचरण अँगरेजों की नाव पर क़ैदी की हैसियत से नहीं थे।

उसी की गोली से फ़स्टर घायल होकर गिरा था और सिपाही की जान गई थी, यह कोई नहीं जानता था। उसे मामूली नौकर समझकर अमियट ने मुङ्गेर से चलते समय छोड़ दिया था, कहा था, "तुम्हारा मालिक बड़ा बदज़ात है, उसे हम सज़ा देंगे, लेकिन तुमसे हमारा कोई काम नहीं। तुम्हारी जहाँ इच्छा, तुम जा सकते हो।" सुनकर सलाम कर रामचरण ने हाथ जोड़कर कहा, "मैं ग्वाल किसान-मजूर हूँ, बातचीत करना भी नहीं जानता, नाराज़ न होना, आप लोगों के साथ क्या मेरा कोई नाता है ?"

अमियट को किसी ने समझा दिया तो अमियट ने पूछा, "क्यो ?"

रा०—नहीं तो मेरे साथ हँसी क्यो कर रहे हैं ?

अ०—कैसी हँसी ?

रा०—मेरा पैर तोड़कर जहाँ इच्छा जाने के लिए कहने में यह मालूम पड़ता है कि मैंने आपके घर ब्याह किया है। मैं ग्वाला हूँ, अँगरेज़ की बहन ब्याहूँगा तो मेरी जात जायगी।

द्विभाषी ने अमियट को बात समझा दी, पर वे कुछ नहीं समझे। मन में सोचा, यह शायद इस देश की एक तरह की खुशामद है। सोचा, जिस तरह नेटिव लोग 'माँ-बाप-भाई, सम्बन्धसूचक ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, रामचरण उसी तरह खुशामद करके उन्हें सम्बन्धी कह रहा है। अमियट बहुत नाखुश नहीं हुए। पूछा, "तुम क्या चाहते हो ?"

रामचरण ने कहा, "मेरा पैर जोड़ देने का हुक्म हो।"

अमियट ने हँसकर कहा, "अच्छा, तुम कुछ दिन हमारे साथ रहो, दवा देंगे।"

रामचरण यही चाहता था। प्रताप क़ैद होकर चले, रामचरण उनके साथ रहना चाहता था। अस्तु, रामचरण अपनी इच्छा से अमियट के साथ चला। वह क़ैद में नहीं रहा।

जिस रात प्रताप भगे, उसी रात को रामचरण किसी से कुछ बिना कहे नाव से उतरकर धीरे-धीरे चला गया। चलते वक़्त रामचरण अस्फुट स्वर से इण्डिल-मिण्डिल की माँ-बाप-बहन के सम्बन्ध में बहुत-सी निन्दासूचक बातें कहता कहता चला। उसका पैर जुड़ गया था।

आठवाँ परिच्छेद

पर्वत पर

आज रात को आकाश में चाँद नही निकला। बादलों ने आकर चाँद, तारे, नीहारिका, नीलिमा, सबको ढक लिया। बादल कटे हुए नही, अनन्तविस्तारवाले थे, जलभरे होने के कारण काले; उनके नीचे प्रगाढ़ अनन्त अन्धकार, सब कुछ ढक लेनेवाला अनन्त अन्धकार, उससे नदी, रेती, किनारे, पहाड़ियाँ, सब कुछ ढक गया है; उसी अँधेरे में शैवलिनी पहाड़ की उपत्यका में अकेली थी।

पिछली रात को किश्ती पीछे लगे अँगरेज़ों के अनुचरों को दूर छोड़कर किनारे लगी थी। बड़ी बड़ी नदियों के किनारे एकान्त जगह की कमी नही, ऐसी ही एक एकान्त जगह किश्ती लगी थी। उसी समय शैवलिनी आँख बचाकर किश्ती से भगी थी। इस दफ़ा शैवलिनी बुरे अभिप्राय से नही भगी। जिस भय से जलते हुए अरण्य से अरण्य के जीव भगते हैं, शैवलिनी उसी भय से प्रताप का संसर्ग छोड़कर भगी थी। सुख, सौन्दर्य और प्रणय आदि से भरे संसार से शैवलिनी जान लेकर भगी। सुख, सौन्दर्य, प्रणय और प्रताप, इनमें शैवलिनी का अब अधिकार नही—आशा नहीं—आकांक्षा भी छोड़नी है। पास रहने पर कौन आकांक्षा से

आँखें फेर सकती हैं ? रेगिस्तान में रहने पर कौन प्यासा पथिक स्वच्छ, शीतल सुवासित जल देखकर बिना पिये रह सकता है ? विक्टर ह्यूगो समुद्र तलवासी राक्षसस्वभाववाले जिस भयङ्कर दीर्घ-बाहु को वर्णना कर गये हैं, लोभ या आकांक्षा उसी जीव के स्वभाव से युक्त है, ऐसा जान पड़ता है । यह बहुत स्वच्छ स्फटिकनिन्दित जल में रहता है, इसके वासगृह के फ़र्श पर ज्योति से खिला हुआ सुन्दर वस्त्र कुछ कुछ चमकता रहता है, इसके घर में बेशकीमत कितने मोती और प्रवाल आदि की किरनें फूटती हैं, परन्तु यह आदमी का खून पिया करता है, इसके घर के सौन्दर्य से मुग्ध होकर जो वहाँ जाता है, यह शतबाहु राक्षस क्रमशः एक एक हाथ फैलाकर, उसे पकड़ता है, पकड़ने पर फिर कोई छुड़ा नहीं सकता । सौ हाथों से हजारों गाँठें जकड़ लेता है, फिर वह राक्षस खून पीनेवाले हजारों मुँह उस अभागे मनुष्य के अङ्ग-अङ्ग में लगाकर उसका खून पीता रहता है ।

लड़ाई में अपने को अक्षम मानकर शैवलिनी पीठ फेरकर भगी । उसके मन में डर था कि प्रताप उसके भगने का हाल मालूम करने पर उसकी खोज करेगा, इसलिए पास किसी जगह न रुककर जहाँ तक चल सकी, चली । भारतवर्ष की मेखला के तौर पर जो पर्वतमाला है, पास ही उसे देख पड़ी । पहाड़ चढ़ने पर कहीं खोजनेवाला कोई उसे देख न ले, इस भय से दिन में वह पहाड़ नहीं चढ़ी, वन में छिपी रही । सारा दिन बिना खाये बीता, शाम पार हो गई, पहले अँधेरा होगा, फिर चाँदना निकलेगी । शैवलिनी अँधेरे में पहाड़ चढ़ने लगी । अँधेरे में पत्थरों की चोटों से दोनों पैर घायल होने लगे, छोटे छोटे लतागुल्मों में राह नहीं मिल रही, काँटों से टूटी शाखाओं के अग्रभाग से या निकली जड़ों की पैनी नोकों से हाथ-पैर छिदने लगे, जिससे खून निकलने लगा । शैवलिनी का प्रयश्चित्त शुरू हुआ ।

इससे शैवलिनी को दुःख नही हुआ । अपनी इच्छा से शैवलिनी इस प्रायश्चित्त मे प्रवृत्त हुई थी : अपनी इच्छा से शैवलिनी सुखमय संसार छोड़कर हिंस्र जन्तुओं से भरे भीषण कटीले पार्वत्य वन मे पैठी थी । अब तक घोरतर पाप में डूबी थी, अब दुख उठाने पर उस पाप का क्या कोई उपशम होगा ?

अस्तु, लहूलोहान पैरों से, रुधिराक्त कलेवर से, भूखी-प्यासी शैवलिनी पहाड़ पर चढ़ने लगी। रास्ता नही—लता-गुल्म और शिलाराशि में दिन मे भी रास्ता नहा मिलता —इस समय अँधेरा है । अतएव शैवलिनी बड़े कष्ट से कुछ दूर तक चढ़ सकी ।

ऐसे समय बड़े ज़ोरशोर से घटा घिर आई। बिना छेद के—बिना दरार के अनन्तविस्तृत काले काले मेघों ने आकाश के मुँह को जैसे कस दिया । अँधेरे पर अँधेरा उतरता हुआ, गिरिमाला, तलस्थ वनराजि, दूर की नदी, सब कुछ उसने ढक लिया, संसार केवल अँधेरा रह गया, अँधेरे के सिवा और कुछ नहीं । अब पहाड चढने की कोशिश व्यर्थ है । शैवलिनी हताश होकर उसी काँटों के वन में पैठी ।

आकाश के मध्यस्थल से सीमान्त तक और सीमान्त से मध्यस्थल तक बिजली कौंधने लगी, बड़ी भयङ्कर ! साथ साथ बहुत ही गम्भीर मेघगर्जन शुरू हुआ । शैवलिनी समझी, गर्मी की तेज आँधी पहाड के उस सानुदेश में बहेगी । पहाड़ के अङ्गों से कितने ही पेड़, शाखा-पत्र-पुष्पादि टूट टूट कर गिरेंगे—यह सुख क्या शैवलिनी के भाग्य में नही ?

अङ्ग में किसका शीतल स्पर्श लगा । वर्षा का एक बूँद पानी । बूँद, बूँद, बूँद ! इसके बाद दिगन्तव्यापी गर्जन ! वह गर्जन वर्षा का, हवा का और बादलों का । इसके साथ कहीं पेड़ की डाल के टूटने का शब्द, कहीं डरे पशु की चीख, कहीं जगह से हटे हुए पत्थर के गिरने का शब्द, दूर गङ्गा की टूटती तरङ्गों

का कोलाहल। सर झुकाये पहाड़ के पत्थर पर बैठी शैवलिनी—ऊपर शीतल जलराशि बरस रही है। पेड़ और लतागुल्मों की शाखाएँ हवा से तड़ित होकर अङ्गों में प्रहत हो रही हैं, फिर उठ रही हैं, फिर प्रहत हो रही हैं। शिखर से जलप्रवाह बड़े वेग से गिरता हुआ शैवलिनी को जाँघ तक डुबाकर बहा जा रहा है।

तुम जड़ प्रकृति हो। तुम्हें करोड़ों प्रणाम। तुम्हारे दया नहीं, ममता नहीं, स्नेह नहीं—जीव को जान लेने में सङ्कोच नहीं, तुम अशेष क्लेश की जननी हो, फिर भी तुम्हीं से सब पा रहे हैं—तुम सुख की खान हो, सर्वमङ्गलमयी, सब अर्थों को देनेवाली, सब तरह की कामनायें पूरी करनेवाली सर्वाङ्गसुन्दरी तुम्हें नमस्कार है। हे महाभयङ्करी नाना रूप से रङ्ग करनेवाली, काली, तुमने भाल पर चाँद को बिन्दी लगाकर मस्तक पर नक्षत्रों का मुकुट पहन, भुवनमोहिनी हँसी हँसकर तुमने संसार को मोह लिया है। गङ्गा की छोटी, छोटी, तरङ्ग में माला गूँथकर उसके फूल-फूल पर तुमने चाँद झुला दिया है, रेती का बालू में कितने करोड़ हीरे जलाये हैं। गङ्गा के हृदय पर नीलिमा ढालकर उसमें कितने युवक-युवतियों को बहाया है! जैसे कितना स्नेह—कितना आदर जानती हो,—कितना आदर दिया है? आज यह क्या है? तुम अविश्वासवाली, सब कुछ नष्ट कर देनेवाली हो। क्यों तुम जीवों को लेकर खेल खेलती हो, यह मुझे नहीं मालूम। तुम्हारे बुद्धि नहीं, ज्ञान नहीं, चेतना नहीं, परन्तु तुम सर्वमयी, सर्वकर्त्री, सर्व-नाशिनी और सर्वशक्तिमयी हो। तुम्हीं ऐशी माया हो, तुम्हीं ईश्वर की कीर्ति हो। तुम्हीं अजेय हो। तुम्हें कोटि-कोटि, कोटि-कोटि प्रणाम हैं।

बहुत देर बाद वर्षा रुकी, आँधी नहीं रुकी, केवल कुछ मन्दीभूत हो गई। अँधेरा जैसे और घना हो गया। शैवलिनी समझी

शैवलिनी समझी कि पानी से भीगे पिच्छल पहाड़ पर चढ़ना-उतरना दोनों असाध्य है। शैवलिनी वहीं बैठी हुई जाड़े से काँपने लगी। तब उसे गार्हस्थ्य सुख से भरा वेदग्राम का पतिगृह याद आया। याद आ रहा था, यदि एक बार वह सुखागार और देख लेती तो सुख से मरती; परन्तु यह तो दूर की बात है, शायद सुर्योदय भी अब नहीं देख पाऊँगी। बार बार जिस मृत्यु को मैंने बुलाया है, आज वह पास है। ऐसे समय उस मनुष्यहीन पर्वत पर, उस अगम्य वन मे, उस महाघोर अन्धकार में, किसी मनुष्य ने शैवलिनी की देह पर हाथ रक्खा।

पहले शैवलिनी ने सोचा, कोई जङ्गली जानवर है। शैवलिनी हटकर बैठी। परन्तु फिर उसी हाथ का स्पर्श हुआ। साफ़ साफ़ मनुष्य के हाथ का स्पर्श—अँधेरे मे और कुछ देख नहीं पड़ा। भय मे विकृत हुए कण्ठ से शैवलिनी ने कहा, "तुम कौन हो? देवता हो या मनुष्य? मनुष्य से शैवलिनी नहीं डरती, परन्तु देवता से डरती है, क्योंकि देवता दण्ड देते हैं।"

किसी ने कोई जवाब नही दिया; परन्तु शैवलिनी समझी, मनुष्य हो, देवता हो वह उसे दोनों हाथो से पकड़ रहा है। गर्म साँस शैवलिनी के कन्धे पर लगी। उसने देखा, एक बाँह शैवलिनी की पीठ पर आई और दूसरी ने शैवलिनी के दोनों पैरों को इकट्ठा कर घेर लिया। शैवलिनी ने देखा, कोई उसे उठा रहा है। शैवलिनी की एक चीख निकल गई। उसने सोचा, आदमी हो, देवता हो, उसे बाहों पर उठाकर कहीं लिये जा रहा है। कुछ दर बाद उसे मालूम हुआ कि वह शैवलिनी को गोद में लेकर सावधानी से पहाड़ पर चढ़ रहा है। शैवलिनी ने सोचा, यह जो भी हो, लारेन्स फस्टर नहीं।

चतुर्थ खण्ड

प्रायश्चित्त

पहला परिच्छेद

प्रताप ने क्या किया

प्रताप ज़मीदार है, और प्रताप डाकू है। हम जिस समय की बात कर रहे है, उस समय बहुत से ज़मींदार डाकू थे। डारविन कहते हैं, आदमी बन्दरों के परपोते है। इस बात से अगर किसी को ग़ुस्सा न आये, तो पूर्वजों की बदनामी सुनकर कोई भी ज़मींदार शायद हमसे नाख़ुश नही होंगे। सचमुच, डाकुओं के वंश में जन्म लेना बदनामी की बात नहीं मालूम देती। क्योंकि, दूसरी जगह देखते है, डाकुओं के वंश में पैदा हुए बहुतेरे गौरव में बढ़े-चढ़े है। तैमूरलङ्ग नाम के प्रसिद्ध डाकू के बाद के वंशज वंश की मर्यादा में पृथ्वी में श्रेष्ठ हुए थे। विलायत में जो लोग वंश-मर्यादा में ख़ास तौर से गर्व करना चाहते है, वे नार्मल या स्केन्डेनेवीय जलदस्युओ के वंश के कहकर अपना परिचय देते हैं। प्राचीन भारत में कुरुवंशीयों की सविशेष मर्यादा थी। वे गाये चुरानेवाले थे। विराट के उत्तर ओर के गोगृह में गायें चुराने गये थे। दो-एक बङ्गाली ज़मीदारों की ऐसी ही वंश-मर्यादा है।

लेकिन दूसरे पुराने ज़मींदारों से प्रताप की दस्युता में कुछ भेद था। अपनी जायदाद बचाने या शहज़ोर दुश्मन को दबाने के लिए ही प्रताप डाकुओं की मदद लेते थे। अकारण दूसरे के माल में हाथ नहीं लगाते थे, न दूसरे को तकलीफ़ पहुँचाते थे; यहाँ तक कि,

दुर्बल या पीड़ित व्यक्ति की रक्षा और परोपकार के लिए ही डाका डालते थे। प्रताप फिर वही रास्ता पकड़ने को हुए।

जिस रात को शैवलिनी किश्ती छोड़कर भगी, उसी रात की सुबह प्रताप नींद से उठकर रामचरण को आया देखकर खुश हुए, परन्तु शैवलिनी को न देखकर चिन्तित हुए। कुछ काल तक उसकी प्रतीक्षा कर, उसे न देखकर उसकी खोज करने लगे। गङ्गा के किनारे खोजा, पर नहीं पाया। काफी वक़्त हो गया। प्रताप निराश होकर इस सिद्धान्त में पहुँचे कि शैवलिनी डूब गई है। प्रताप जानते थे, अब उसका डूब मरना असम्भव नहीं।

प्रताप ने पहले सोचा, "शैवलिनी की मृत्यु का कारण मैं हूँ।" लेकिन यह भी सोचा, "मेरा क़ुसूर क्या है? मैं धर्म छोड़कर अधर्म के रास्ते नहीं गया। शैवलिनी जिस कारण मरी है, वह मेरे रोकने से रुकनेवाला कारण नहीं।" अस्तु, प्रताप को अपने पर ग़ुस्सा करने का कारण नहीं मिला। चन्द्रशेखर पर कुछ ग़ुस्सा किया—चन्द्रशेखर ने क्यों शैवलिनी से ब्याह किया था? कुछ ग़ुस्सा रूपसी पर आया। क्यों शैवलिनी से प्रताप का ब्याह नहीं हुआ, रूपसी से हुआ? सुन्दरी पर कुछ और ग़ुस्सा आया—सुन्दरी अगर उन्हें न भेजती तो न प्रताप के साथ शैवलिनी के गङ्गा तैरने की नौबत आती, न शैवलिनी मरती। लेकिन सब से ज्यादा ग़ुस्सा लारेन्स फ़स्टर पर आया—वह अगर शैवलिनी का घर न छुड़ाता तो यह कुछ भी न होता। अँगरेज़ अगर बङ्गाल में न आते तो शैवलिनी लारेन्स फ़स्टर के हाथ न पड़ती। अतएव अँगरेज़-जाति पर प्रताप का अनिवार्य क्रोध हुआ। प्रताप ने सिद्धान्त किया, फ़स्टर को फिर पकड़ कर बध करके, अब के जला देना होगा; नहीं तो वह फिर बचेगा—गाड़ देने पर मिट्टी भेदकर निकल सकता है। दूसरा सिद्धान्त यह किया कि अँगरेज़-जाति की बङ्गाल से जड़ खोदकर फेंक देना चाहिए, क्योंकि उनमें बहुत से फस्टर हैं।

इस तरह का विचार करते हुए प्रताप उसी किश्ती से मुङ्गेर लौट गये ।

प्रताप क़िले में गये । देखा, अँगरेज़ों से नव्वाब की लड़ाई होगी, तैयारियाँ बढ़ी-चढ़ी हो रही हैं ।

प्रताप को ख़ुशी हुई । मन में सोचा, क्या नव्वाब इन असुरों को बङ्गाल से खदेड नही सकेंगे ? फ़स्टर क्या पकडा नही जायगा ?

इसके बाद सोचा, जिसकी जैसी शक्ति है, उसका कर्त्तव्य है, इस लड़ाई में नव्वाब की मदद करे । गिलहरियाँ भी समुद्र बाँध सकती हैं ।

इसके बाद सोचा, क्या मुझसे कोई मदद नहीं पहुँच सकती ? मैं क्या कर सकता हूँ ?

इसके बाद सोचा, मेरे सेना नहीं, सिर्फ़ लठैत हैं, डाकू हैं । उनसे कौन-सा काम हो सकता है ?

सोचा, कोई दूसरा काम न हो, लूटपाट हो सकती है । जो गाँव अँगरेज़ों की मदद करेगा, वह गाँव लूट सकूँगा । जहाँ देखूँगा, अँगरेज़ों की रसद लिये जा रहे हैं, वही रसद लूट लूँगा । जहाँ देखूँगा, अँगरेज़ों की द्रव्य-सामग्री जा रही है, वही डाका डालूँगा । ऐसा करने पर भी नव्वाब का काफ़ी उपकार कर सकूँगा । सामने की लड़ाई में जो जीत है, वह दूसरे पक्ष के विनाश का बहुत साधारण उपाय है । सेना को पीछे से घेरना और रसद पहुँचने में बाधा डालना मुख्य उपाय है । जहाँ तक हो सकेगा, वहाँ तक यही करूँगा ।

इसके बाद सोचा, मैं क्यों इतना करूँगा ? करूँगा, इसके अनेक कारण हैं । पहले तो अँगरेज़ ने चन्द्रशेखर का सर्वनाश किया है; दूसरे, शैवलिनी मर गई है; तीसरे, मुझे क़ैद किया था; चौथे, ऐसा अनिष्ट और और आदमियों का किया है और कर सकते हैं;

पाँचवें, नव्वाब का यह उपकार कर सकने पर दो-एक बड़े बड़े परगने पा जाऊँगा; इसलिए मै ऐसा करूँगा।

प्रताप ने उमरा की खुशामद करके नव्वाब से मुलाक़ात की। नव्वाब से उनकी क्या क्या बातें हुईं, यह अप्रकट रहा। नव्वाब से मुलाक़ात करके वे अपने घर को रवाना हुए।

बहुत दिनों बाद उनके घर आने पर रूपसी की गहरी चिन्ता दूर हुई। परन्तु रूपसी शैवलिनी की मृत्यु सुनकर दुखी हुई। प्रताप आये है मालूम कर सुन्दरी उन्हें देखने आई। शैवलिनी की मृत्यु का संवाद सुनकर सुन्दरी बहुत दुखी हुई; परन्तु कहा, "जो होना था, हुआ। शैवलिनी अब सुखी हुई। उसका बचने से मरना ही सुखकर था, यह किस मुख से नहीं कहूँगी?"

रूपसी और सुन्दरी से मुलाक़ात करके प्रताप फिर घर छोड़ गये। जल्द सारे देश मे बात फैल गई कि मुङ्गेर से कटोआ तक कुल डाकू और लठैत इकट्ठे हो रहे है, प्रतापराय उन्हें दलबद्ध कर रहे है।

सुनकर गुरगन खाँ चिन्ता में पड़े।

दूसरा परिच्छेद

शैवलिनी ने क्या दिया

पहाड़ की बड़ी ही अँधेरी गुफा है, पीठ को छेदनेवाले पत्थरों पर शैवलिनी पड़ी हुई है। भारी आकारवाले पुरुष शैवलिनी को वहाँ डाल गये हैं। आँधी-पानी रुक गया है, लेकिन गुफा में अँधेरा—केवल अँधेरा—केवल अँधेरा है। अँधेरे में गहरी चुप्पी। आँखें मूँदने पर अँधेरा, आँखें खोलकर देखने पर वैसा ही अँधेरा। कोई शब्द नहीं,

सिर्फ़ कहीं पहाड़ के किसी छेद से पानी की एक-एक बूँद गुफा के नीचे शिला पर थोड़ी थोड़ी देर में टपक रही है, और जैसे कोई जीव, मनुष्य है या पशु--नही मालूम, उस गुफा मे साँस ले रहा है।

अब शैवलिनी को डर लगा। डर? डर नही। मनुष्य में बुद्धि की स्थिरता की सीमा है, शैवलिनी यह सीमा पार कर गई। भय शैवलिनी को नही, क्योंकि जीवन उसके लिए ढोने योग्य नहीं, सहने योग्य नहीं, भार हो उठा है--फेंक देने से ही अच्छा है। बाक़ी जो कुछ है--सुख, धर्म, जाति, कुल, मान, सब चला गया है, अब और क्या जायगा? किसका डर?

बचपन से, हमेशा से जो आशा शैवलिनी ने हृदय के एकान्त में यत्नपूर्वक जगा रक्खी थी, उस दिन या उसके पहले ही उसको जड़ काट दी थी। जिसके लिए उसने सब कुछ छोड़ा था, अब उसे भी छोड़ दिया; चित्त बहुत ही विकल और बिलकुल बलहीन है; इस पर लगभग दो दिन तक भूखे रहना, फिर रास्ते की और पहाड़ चढ़ने की थकावट, आँधी और पानी से हुई तकलीफ़ें; देह भी बहुत विकल और निहायत बलशून्य; इस पर यह भीषण दैवीचक्र--शैवलिनी को यह सब दैवी ही मालूम दिया--मनुष्य का चित्त और कब तक स्थिर रहता? देह टूट पड़ी--मन टूट गया--शैवलिनी बेहोश होकर अधनीदी, अधजगी हालत में रही। गुफा के नीचेवाले पत्थर पीठ मे गड़ रहे थे।

पूरी तरह बेहोश हो जाने पर, शैवलिनी ने देखा, सामने बहुत बड़े पाट की नदी है; लेकिन नदी में पानी नही, दोनों करारे छापकर लहू बह रहा है; उसमें हाड़, गलती लाशें, आदमी के सर और कङ्काल आदि बह रहे हैं। मगर की आकृतिवाले जीव हैं, उनके चमड़ा और मास नही, सिर्फ़ हाड़ हैं और बड़ी बड़ी भयङ्कर जलती हुई दो आँखें, इधर-उधर घूमते हुए वही गलती लाशें पकड़ पकड़ कर खा रहे हैं।

शैवलिनी ने देखा, भारी आकृतिवाले जो महापुरुष उसे पहाड़ से पकड़ लाये हैं, उन्हीं ने फिर उसे पकड़कर नदी के किनारे लाकर बैठाला। उस देश में धूप नहीं, चाँदनी नहीं, तारे नहीं, मेघ नहीं, प्रकाश का नाम नहीं, फिर भी अँधेरा नहीं। सब कुछ दिख रहा है, लेकिन धुंधला। खून की नदी, गलती लाशें, बहते हुए कङ्काल, हाड़ के घड़ियाल, सब उस भयानक अँधेरे में दिख रहे हैं। नदी के किनारे बालू नहीं, बालू की जगह लोहे की सुइयाँ नोक उठाये हुए हैं। उस महाकाय पुरुष ने शैवलिनी को वहाँ बैठालकर नदी पार करने के लिए कहा। पार करने का कोई साधन नहीं। नाव नहीं, पुल नहीं, महाकाय पुरुष ने कहा, "तैर कर पार कर, तू तैरना जानती है, गङ्गा में प्रताप के साथ बहुत तैरी है।" इस लहू की नदी में शैवलिनी किस तरह तैरे? महाकाय पुरुष ने तब हाथ का बेंत मारने के लिए उठाया। डरकर शैवलिनी ने देखा, वह बेंत जलते हुए लाल लोहे का बना हुआ है। देर होती हुई देखकर महाकाय पुरुष शैवलिनी की पीठ में बेंत चटकाने लगे। मार से शैवलिनी का बदन जलने लगा। शैवलिनी और मार नहीं सह सकी, खून की नदी में कूद पड़ी, साथ ही हाड़वाले घड़ियाल उसे पकड़ने के लिए बढ़े, लेकिन पकड़ा नहीं। शैवलिनी तैरने लगी। खून की तरङ्गें देह के भीतर पैठने लगीं। महाकाय पुरुष उसके साथ साथ लहू की तरङ्गों के ऊपर से पैदल चले, डूबे नहीं। रह रह कर घोर दुर्गन्धवाली सड़ी लाशें बह बहकर शैवलिनी के बदन से लगने लगीं। इस तरह शैवलिनी दूसरे पार पहुँची। वहाँ किनारे पर चढ़कर, देखकर, "बचाओ, बचाओ" कहकर चिल्लाने लगी। सामने जो कुछ देखा, उसकी सीमा नहीं, आकार नहीं, रंग नहीं, नाम नहीं। वहाँ प्रकाश बहुत ही क्षीण, परन्तु इतना गर्म कि आँखों में लगते ही शैवलिनी की आँखें चटकने लगीं, ज़हर के लगने से जैसी जलन होती है, वैसी जलन होने लगी। नाक में ऐसी घोर बदबू लगी कि नाक ढँककर

भी शैवलिनी पागल जैसी हो गई। कानों में बड़े कठोर, बड़े कर्कश, भय पैदा करनेवाले शब्द एक साथ आने लगे--हृदय को दो टूक कर देनेवाला आर्त्तनाद, पैशाचिक हास्य, विकट हुङ्कार, पर्वत का फटना, वज्र का गिरना, पहाड़ों का टकराना, जल-कल्लोल, आग की गरज, मुमूर्षु का रोना, सब एक साथ कानो के पर्दे पार करने लगे। सामने से छन-छन में बड़े ज़ोर-शोर से आँधी बहने लगी, वह शैवलिनी को आग की लपट की तरह जलाने लगी, कभी ठण्ढक से सैकड़ों हज़ारों छुरियाँ जैसे बदन में चुभने लगी। शैवलिनी पुकारने लगी, "जान गई, बचाओ।" तब असह्य दुर्गन्धवाला एक बड़ा बदशक्ल कीड़ा आकर शैवलिनी के मुँह में घुसने लगा। शैवलिनी तब चीखकर कहने लगी, "बचाओ, बचाओ, यह नरक है। क्या यहाँ से उद्धार पाने का उपाय नही ?"

महाकाय पुरुष ने कहा, "है।" स्वप्नावस्था मे अपनी ही चीख से शैवलिनी मोहनिद्रा से जग गई। लेकिन फिर भी भ्रान्ति नही गई थी। पीठ में पत्थर गड़ रहे थे। भ्रान्ति में रहने के कारण जगकर भी शैवलिनी पुकार उठी, "मेरा क्या होगा ? मेरे उद्धार का क्या उपाय नही ?"

गुफ़ा के भीतर गम्भीर नाद हुआ--"है।"

यह क्या है ? शैवलिनी क्या सचमुच ही नरक में है ? शैवलिनी ने विस्मित होकर, विमुग्ध होकर, डरकर पूछा, "कौन-सा उपाय है ?"

गुहा के भीतर से उत्तर हुआ, "बारह साल का व्रत लो।"

क्या यह देववाणी है ? कातर होकर शैवलिनी कहने लगी, "क्या है वह व्रत ? कौन मुझे सिखायेगा ?"

उत्तर--मैं सिखाऊँगा।

शै०--तुम कौन हो ?

उत्तर--व्रत ग्रहण करो।

शै०--क्या करूँगी ?

उत्तर—अपना यह चीर छोड़कर जो वस्त्र मैं दूँ, वही पहनो। हाथ फैलाओ।

शैवलिनी ने हाथ फैलाया। फैले हुए हाथ पर एक कपड़ा रख गया। इसे पहनकर, पहलेवाला वस्त्र छोड़कर शैवलिनी ने पूछा, "और क्या करूँगी ?"

उत्तर—तुम्हारी ससुराल कहाँ है ?

शै०—वेदग्राम। क्या वहाँ जाना होगा ?

उत्तर—हाँ, जाकर गाँव के किनारे कुटी बनाना।

शै०—और ?

उत्तर—ज़मीन पर सोना।

शै०—और ?

उत्तर—फलमूल के सिवा दूसरा भोजन न करना। एक दफ़ा छोड़कर दो बार न खाना।

शै०—और ?

उत्तर—जटा धारण करना।

शै०—और ?

उत्तर—भीख माँगने के लिए सिर्फ़ एक दफ़ा गाँव के भीतर जाना। भीख माँगते समय हर गाँव में अपना पाप कहना।

शै०—मेरा पाप तो कहने का नहीं, क्या दूसरा प्रायश्चित्त नहीं ?

उत्तर—है।

शै०—क्या ?

उत्तर—मृत्यु।

शै०—व्रत ग्रहण किया—आप कौन हैं ?

शैवलिनी को कोई उत्तर नहीं मिला। तब कातरता से शैवलिनी ने फिर पूछा, "आप जो भी हों, जानना नहीं चाहती, पर्वत के

देवता समझ कर मैं आपको प्रणाम करती हूँ। आप मेरी एक बात का और उत्तर दीजिए, मेरे पति कहाँ है ?"

उत्तर--क्यों ?

शै०--क्या उनके दर्शन फिर नही पाऊँगी ?

उत्तर--प्रायश्चित्त समाप्त होने पर पाओगी।

शै०--बारह साल बाद ?

उत्तर--बारह साल बाद।

शै०--प्रायश्चित्त ग्रहण करके कितने दिन जिऊँगी ? यदि बारह साल के बीच में मर जाऊँ ?

उत्तर--तो मरने के समय दर्शन पाओगी।

शै०--किसी तरह क्या इससे पहले दर्शन नही मिलेगे ? आप देवता हैं, आप अवश्य जानते हैं।

उत्तर--यदि अभी उन्हें देखना चाहती हो, तो एक हफ्ता इस गुफा में अकेली रहो। इस हफ्ते में दिन-रात मन में पति को ही सोचो, किसी दूसरे विचार को मन में जगह न देना। सात दिनो तक सिर्फ एक दफ़ा शाम के वक्त बाहर निकल कर फल-मूल ले जाया करो; लेकिन भरपेट भोजन न करना, भूख जैसे बनी रहे। किसी आदमी के पास न जाना या किसी से मुलाकात होने पर बातचीत न करना। यदि इस अँधेरी गुफा में एक हफ्ता रहकर सरल चित्त से अनन्यमना होकर पति का अविरत ध्यान करोगी, तो उनके दर्शन होंगे।

तीसरा परिच्छेद

हवा उठी

शैवलिनी ने वैसा ही किया--सात दिन तक गुफा से बाहर नहीं निकली--सिर्फ एक दफ़ा शाम के वक़्त फलमूल की खोज में बाहर निकलती थी। सात दिनों तक किसी आदमी से बातचीत नहीं की। प्रायः अनशन में उस विकट अँधेरे में रहकर एक मन से पति का ध्यान करती रही--न कुछ देख पाती है, न कुछ सुन पाती है, न कुछ छू पाती है। इन्द्रियाँ विरुद्ध हैं--मन निरुद्ध है, केवल सब जगह पति है। चित्तवृत्तियों का अकेला अवलम्ब पति हुआ। अँधेरे में और कुछ नहीं देख पाती--सात दिन, सात रात केवल पति का मुँह देखा। गहरी नीरवता में और कुछ नहीं सुन पाती--केवल पति की ज्ञान से पूर्ण, स्नेह से विचलित बातें सुनती रही--नाक केवल उनके पुष्पपात्र की पुष्पराशि की सुगन्ध पाती रही--त्वचा केवल चन्द्रशेखर के आदर की स्पर्शानुभूति करती रही। आशा और किसी में नहीं--और किसी में नहीं थी, पति के देखने की इच्छा में ही रही। स्मृति केवल उस मुख के चारों ओर घूमती रही जो दाढ़ी से भव्य और चौड़े ललाट से प्रमुख है, काँटे से छिदे पंख-वाली भौंरी जिस तरह दुर्लभ सुगन्धवाले फूल के पेड़ के नीचे कष्ट से घूमती फिरती है, उसी तरह घूमती रही। जिसने इस व्रत की सलाह दी थी, वह मनुष्य के चित्त का कोना-कोना देख चुका है, इसमें सन्देह नहीं। निर्जन, नीरव, अन्धकार, मनुष्य का नामोनिशान नहीं, इस पर देह में क्लेश, भूख से पीड़ित, चित्त में दूसरी चिन्ता नहीं, ऐसे समय जिस विषय पर चित्त स्थिर किया जाता है, जपते जपते चित्त उसी में लीन हो जाता है। इस अवस्था में, थकी देह और थके मन में, एकाग्र चित्त से पति का ध्यान करती हुई शैवलिनी विकृति को प्राप्त हुई।

विकृति ? या दिव्य चक्षु ? शैवलिनी ने देखा—अन्तर के अन्तर से दिव्य आँखें खोलकर शैवलिनी ने देखा, यह क्या रूप है ! यह दीर्घ शाल-तरु को पराजित करनेवाली, सुभुज, सुगठन, सुकुमार, लावण्यमयी देह जिस रूप की शिखर है !—यह जो ललाट प्रशस्त, चन्दन-चर्चित, चिन्ता-रेखा- विशिष्ट है—यह जो सरस्वती की शय्या, इन्द्र की रणभूमि, मदन का सुख कुञ्ज, लक्ष्मी का सिंहासन है ।—इसके पास प्रताप ? छीः—छीः ! समुद्र के पास गंगा ! वे जो आँखे जल रही है, हँस रही है, फिर रही हैं, तैर रही हैं—दीर्घ, विस्फारित, तीव्रज्योति, स्थिर, स्नेहमयी, करुणामयी, हल्का मज़ाक करनेवाली, सब जगह तत्त्व-जिज्ञासु—इनके पास प्रताप की आँखें ? मैं क्यों भूली, क्यों डूबी, क्यों मरी ? यह जो सुन्दर सुकुमार बलिष्ठ देह है—नवपत्र शोभित शालतरु, माधवी जड़ित देवदारु, कुसुमपरिव्याप्त पर्वत, आधा सौन्दर्य और आधी शक्ति—आधा चन्द्र और आधा सूर्य—आधी गौरी और आधे शङ्कर—आधी राधा और आधे श्याम—आधी आशा और आधा भय—आधी ज्योति और आधी छाया—आधी वह्नि और आधा धूम—कहाँ का प्रताप ? क्यों नही देखा—क्यों नहीं डूबी—क्यों नही मरी ? वह जो भाषा परिष्कृत है, परिस्फुट, हास्यदीप्त, व्यङ्गरंजित, स्नेह परिप्लुत, मृदु, मधुर, परिशुद्ध, वहाँ कहाँ का प्रताप ? क्यों डूबी—क्यों मरी—क्यों किनारा छोड़ा ? वह जो हँसी पुष्पात्र पर, रक्खी मल्लिका राशि-जैसी है, मेघमण्डल मे बिजली-जैसी बुरे साल में दुर्गा पूजा-जैसी, मेरे सुख स्वप्न की तरह, उसे क्यों नही देखा, क्यों डूबी, क्यों मरी, क्यों नहीं समझी ? वह जो प्यार समुद्र-जैसा है, अपार, अपरिमेय, अतलस्पर्श, अपने बल से आप चञ्चल—प्रशान्त भाव में स्थिर, गम्भीर, मधुर—चाञ्चल्य में कूलप्लावी, तरङ्ग भंग भीषण, अगम्य, अजेय, भयंकर, क्यों नहीं समझी, क्यों हृदय पर नहीं उठा लिया, क्यों प्राण निछावर नही कर दिये ? मैं कौन हूँ ? क्या उनके योग्य हूँ ?—बालिका,

नासमझ, निरक्षर, असत्, उनकी महिमा को समझने में अक्षम, उनके पास मैं कौन हूँ ? समुद्र में घोंघा, कुसुम में कीट, चाँद में कलङ्क, चरणों में रेणु, उनके निकट मैं क्या हूँ ! जीवन में दुःस्वप्न, हृदय मे विस्मृति, सुख में विघ्न, आशा में अविश्वास—उनके निकट मैं क्या हूँ ? सरोवर में पंक, मृणाल में कंटक, पवन में धूलि, अनल में पतङ्ग, मैं डूबी, मरी क्यों नही ?

जिसने कहा था, इस तरह पति का ध्यान करो, वह अनन्त-मानव-हृदय-समुद्र की पतवार पकड़नेवाला है, सब कुछ जानता है। जानता है कि इस मन्त्र से हमेशा की बहनेवाली नदी दूसरी ढाल से बहाई जा सकती है, जानता है कि इस वज्र से पत्थर टूटता है, इस गण्डुष मे समुद्र सोख जाता है, इस मन्त्र से वायु रुक जाती है। शैवलिनी के चित्त में चिर प्रवाहित नदी घूमी, पहाड़ टूटा, समुद्र सोखा, हवा रुकी। शैवलिनी ने प्रताप को भूलकर चन्द्रशेखर को प्यार किया।

मनुष्य की इंद्रियों के रास्ते रोको, इन्द्रियों को विलुप्त करो, मन को बाँधो, बाँधकर एक रास्ते पर छोड़ दो, दूसरा रास्ता बन्द कर दो, मन की शक्ति ले लेा, मन क्या करेगा ? उसी एक रास्ते जायगा, उसी में स्थिर होगा, उसी में रहेगा। शैवलिनी ने पाँचवे दिन लाये हुए फल-मूल नही खाये, छठे दिन फलमूल लेने नही गई, सातवें दिन सुबह को सोचा, पति के दर्शन हों, न हों, आज मरूँगी। सातवीं रात को मन में सोचा हृदय में पद्म खिला हुआ है, उस पर चन्द्रशेखर योगासन से बैठे हुए हैं; शैवलिनी भौंरा बनकर पादपद्मों में गुञ्जार कर रही है।

सातवीं रात को, अँधेरी, नीरव, कर्कश शिलाओं की उस गुफा में, अकेली पति का ध्यान करती हुई शैवलिनी की चेतना जाती रही। वह तरह तरह के स्वप्न देखने लगी। कभी देखा, वह भयंकर नरक में डूब गई है; अगणित, सौ-सौ हाथों के लम्बे साँप दस-दस हज़ार फन काढ़ कर शैवलिनी को लपेट रहे हैं, दस हज़ार सरों से, मुँह

फैला कर शैवलिनी को निगलने के लिए आ रहे हैं, सब की मिली फुफ्कारों से तेज़ आँधी की जैसी आवाज निकल रही है। चन्द्रशेखर आकर एक बड़े साँप के फन पर पैर रखकर खड़े हो गये, तब सब साँप बाढ़ के पानी की तरह सिमट कर हट गये। कभी देखा, एक अनन्त कुंड में पर्वताकार आग जल रही है, उसकी लपट आकाश छू रही है, उसके भीतर शैवलिनी जल रही है; ऐसे समय चन्द्रशेखर ने आकर उस पर्वत पर एक गण्डूष पानी डाला, उसी वक्त आग की राशि बुझ गई, ठंढी हवा बही, कुण्ड मे स्वच्छ जलवाली तर-तर करती हुई नदी बह चली, किनारे फूल खिले; नदी के पानी में बड़े बड़े कमल खिले; चन्द्रशेखर उन पर खड़े हुए बहने लगे। कभी देखा, एक बड़ा बाघ आकर शैवलिनी को मुँह में दबाकर पर्वत पर लिये जा रहा है; चन्द्रशेखर ने आकर पूजा के पुष्पपात्र से एक फूल लेकर फेंककर, बाघ को मारा, उसी समय बाघ का सर कट कर गिर गया, उसकी जान निकल गई। शैवलिनी ने देखा, उसका मुंह फ़स्टर के मुँह की तरह का है।

रात खत्म होने पर शैवलिनी ने देखा, शैवलिनी की मृत्यु हो गई है, फिर भी ज्ञान है। देखा, पिशाच उसकी देह लेकर अँधेरे में शून्य पथ पर उड़ रहे हैं। देखा, कितने काले बादलों के समुद्र हैं, बिजली की आग की कितनी राशियाँ पार करके, उसके केश पकड़े हुए उड़े जा रहे हैं। आकाश-वासी कितने किन्नर और कितनी अप्सरायें मेघ की तरङ्गों से मुँह उठाकर शैवलिनी को देखकर हँस रही हैं। देखा, कितनी आकाश-विहारिणी ज्योतिर्मयी देवियाँ सोने के बादलों पर चढ़ी हुईं, सोने के देह में बिजली की माला पहने हुए, काले बालोंवाले सर पर सितारों की माला डाले हुए घूम रही हैं; शैवलिनी की पापी देह को छूकर बहती हुई हवा के लगने पर उनकी ज्योति मलिन पड़ती जा रही है। कितनी गगनचारिणी भैरवियाँ, राक्षसियाँ, अँधेरे-जैसे शरीर से बड़े बड़े काले बादलों पर झूमती हुई प्रबल आँधी में घूमती क्रीड़ा कर

रही है; शैवलिनी की दुर्गन्धवाली देह देखकर उनकी जीभ में पानी आ रहा है; वे मुँह फैलाकर खाने आ रही हैं। देखा, कितने देव-देवियों के विमानों की कृष्णता-रहित आलोकमयी छायायें मेघों पर पड़ रही हैं, कही पापिष्ठा शेवलिनी की शव की छाया विमान को पवित्र छाया से लगने पर शैवलिनी का पाप कट जाय, इस डर से वे विमान हटा ले रहे हैं। देखा, तारा-सुन्दरियाँ नीले आसमान में छोटे छोटे मुँह निकाल कर किरणमयी उँगलियों से एक दूसरी को शैवलिनी का शव दिखा रही हैं, कह रही हैं—"देखो, बहन, देखो, मनुष्य-कीटों में असती भी है।" कोई तारा काँप कर आँखें मुंद रही है, कोई तारा लाज से मेख में मुँह छिपा रही है, कोई तारा 'असती' शब्द सुनकर भय से गुल हुई जा रही है। पिशाच शैवलिनी को लेकर ऊँचे चढ़ रहे हैं, इसके बाद, और भी ऊँचे, और मेघ—और तारायें पार करके और, ऊँचे चढ़ रहे हैं। बहुत ऊँचे चढकर वहाँ से शैवलिनी की देह नरककुण्ड में डालेंगे, इसलिए चढ़ रहे है। जहाँ चढ़े, वहाँ अन्धकार है, जाड़ा है, मेघ नहीं, तारायें नहीं, प्रकाश नहीं, वायु नही, शब्द नही। शब्द नहीं, परन्तु अकस्मात् बहुत दूर नीचे से बड़ा भयंकर कल-कल घर-घर शब्द सुन पड़ने लगा, जैसे बहुत दूर, नीचे, सैकड़ों-हज़ारों समुद्र एक साथ गरज रहे है। पिशाचों ने कहा, "वह नरक का कोलाहल सुन पड़ता है, यहाँ से शव डाल दो।" यह कहकर पिशाचों ने शैवलिनी के सर पर पदाघात करके शव फेंक दिया। शैवलिनी चक्कर खाती हुई गिरने लगी। चक्कर का वेग क्रमशः बढ़ने लगा, अन्त में कुम्हार के चाक की तरह घूमने लगा; शव के मुँह और नाक से खून निकलने लगा। क्रमशः नरक का गर्जन निकट सुनाई पड़ने लगा, दुर्गन्ध बढ़ने लगी, अकस्मात् ज्ञान में मरी हुई शैवलिनी को दूर नरक दिखलाई पड़ा। इसके बाद ही उसकी आँखें अन्धी, कान बहरे हो गये; तब वह मन-ही-मन चन्द्रशेखर का ध्यान करने लगी, मन-ही-मन पुकारने लगी,

"कहाँ हो तुम, स्वामी ? कहाँ हो तुम, प्रभु ? स्त्री-जाति के जीवन के सहाय, आराधना के देवता सबमें सर्वमङ्गल। कहाँ हो तुम चन्द्रशेखर ? तुम्हारे चरणारविन्दों में सैकड़ों—हज़ारों प्रणाम ! मुझे बचाओ। तुम्हारे पास अपराध करके मैं इस नरककुण्ड में गिर रही हूँ, तुम नहीं बचाओगे तो कोई देवता मुझे नहीं बचा सकते—मुझे बचाओ। तुम मुझे बचाओ, प्रसन्न होओ, यहाँ आकर दोनों पैर मेरे मस्तक पर रक्खो, तभी मैं नरक से उद्धार पाऊँगी।"

तब अन्धी, बहरी, मरी हुई शैवलिनी को जान पड़ने लगा, किसी ने उसे गोद में लेकर बैठाला—उनके अङ्गों की सुगन्ध से दिशाएं भर गईं। वह दुरन्त नरक-रव सहसा अन्तर्हित हो गया, सड़ी बदबू की जगह फूलों की ख़ुशबू उड़ने लगी। एकाएक शैवलिनी का बहरापन मिट गया, आँखों से फिर देख पड़ने लगा; सहसा शैवलिनी को मालूम दिया, यह मृत्यु नहीं, जीवन है, यह स्वप्न नहीं, यथार्थ है। शैवलिनी को होश हुआ।

उसने आँखें खोलकर देखा, गुफा में कुछ उजाला पैठा है, बाहर चिड़ियों का सुबह का चहकना सुन पड़ रहा है। लेकिन यह क्या ? किसकी गोद पर उसका सर है ?—किसका मुँह उसके सर पर है ?—आकाश में उगे हुए पूरे चाँद की तरह कौन इस प्रभात के अँधेरे को प्रकाशित कर रहा है ? शैवलिनी ने पहचाना, चन्द्रशेखर—ब्रह्मचारी के वेश में चन्द्रशेखर हैं !

चौथा परिच्छेद

नाव डूबी

चन्द्रशेखर ने कहा, "शैवलिनी !"

शैवलिनी उठकर बैठ गई, चन्द्रशेखर के मुँह की तरफ़ देखा, चक्कर आ गया, शैवलिनी गिर गई, मुँह चन्द्रशेखर के पैरों पर

घिसने लगा। चन्द्रशेखर ने उसे पकड़ कर उठाया। उठाकर अपनी देह के सहारे रखकर शैवलिनी को बैठाला।

शैवलिनी रोने लगी। ऊँचे स्वर से रोती हुई चन्द्रशेखर के पैरों पर फिर गिरकर बोली, "अब मेरी दशा क्या होगी ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "तुमने मुझे क्यों देखना चाहा था ?"

शैवलिनी ने आँखें पोंछीं, रोना रोका, स्थिर होकर कहने लगी, "जान पड़ता है, मैं अब बहुत थोड़े दिन बचूँगी।" शैवलिनी काँपी, स्वप्न में देखी घटनायें याद आईं, कुछ देर माथे पर हाथ रखकर चुपचाप रहकर फिर कहने लगी, "थोड़े दिन बचूँगी, मरने के पहले तुम्हें देखने की साध हुई थी। इस बात पर कौन विश्वास करेगा ? क्यों विश्वास करेगा ? जो भ्रष्टा होकर पति को छोड़ आई है, उसकी फिर पति देखने की कौन सी साध ?"

शैवलिनी कातरता की विकट हँसी हँसी।

चन्द्र०—तुम्हारी बात पर मुझे अविश्वास नहीं, मैं जानता हूँ, तुम्हें बलपूर्वक पकड़ ले गये थे।

शै०—वह झूठ बात है। मैं अपनी इच्छा से फ़स्टर के साथ चली गई थी। डाका डालने से पहले फ़स्टर ने मेरे पास एक को भेजा था।

चन्द्रशेखर ने सिर झुका लिया। धीरे धीरे शैवलिनी को फिर सुलाया, धीरे धीरे उठे, चलने को होकर मृदु स्वर से कहा, "शैवलिनी, बारह साल प्रायश्चित्त करो। यदि दोनों बचे रहेंगे तो प्रायश्चित्त के बाद फिर मुलाक़ात होगी। इस समय यहीं तक।"

शैवलिनी ने हाथ जोड़ लिये, कहा, और एक दफ़ा बैठो। जान पड़ता है, प्रायश्चित्त मेरे भाग्य में नहीं।" फिर वही स्वप्न याद आया—"बैठो—तुम्हें कुछ देर देखूँ।"

चन्द्रशेखर बैठे।

शैवलिनी ने पूछा—"आत्महत्या में क्या पाप है ?" शैवलिनी

एक निगाह से चन्द्रशेखर को देख रही थी, उसके प्रफुल्ल नयन-पद्म आँसू में तैर रहे थे ।

चन्द्र०—है । क्यों मरना चाहती हो ?

शैवलिनी काँपी । कहा, "मर नहीं सकूँगी—उसी नरक में पड़ूँगी ।"

चन्द्र०—प्रायश्चित्त करने पर ही नरक से उद्धार होगा ।

शै०—इस मनोनरक से उद्धार पाने का क्या प्रायश्चित्त है ?

चन्द्र०—वह क्या ?

शै०—इस पर्वत पर देवता आकर रहते हैं । उन्होंने मुझे क्या किया है, मैं नहीं कह सकती ।—मैं दिन-रात नरक का स्वप्न देखती हूँ ।

चन्द्रशेखर ने देखा, शैवलिनी की निगाह गुहा के प्रान्त पर लगी है—जैसे कुछ दूर पर कुछ देख रही है । देखा, उसका कुम्हलाया मुँह और सूख गया, आँखें फैल गईं, पलकों का गिरना बन्द हो गया; नाक के छेद सिमटने-फैलने लगे । देह रोमाञ्चित हुई और काँपने लगी । चन्द्रशेखर ने पूछा, क्या देख रही हो ?

शैवलिनी ने कुछ कहा नहीं, पहले की तरह देखती रही । चन्द्रशेखर ने पूछा, क्यों डर रही हो ?

शैवलिनी पत्थर जैसी हो गई ।

चन्द्रशेखर—आश्चर्य में आ गये । बहुत देर तक नीरव रहकर शैवलिनी के मुँह की तरफ़ देखते रहे । कुछ भी समझ नहीं सके । एकाएक शैवलिनी बड़े ज़ोर से चिल्ला उठी—"प्रभो, बचाओ, बचाओ, तुम मेरे पति हो, तुम नहीं बचाओगे तो कौन बचायेगा ?"

मूर्च्छित होकर शैवलिनी ज़मीन पर गिर गई ।

चन्द्रशेखर ने पास के निर्झर से पानी ले आकर शैवलिनी के मुँह पर छींटे मारे । उत्तरीय झलने लगे । कुछ देर बाद शैवलिनी को होश हुआ । शैवलिनी उठकर बैठी और फिर रोने लगी ।

चन्द्रशेखर ने पूछा, "क्या देख रही थीं ?"

शै०—वही नरक ।

चन्द्रशेखर ने देखा, ज़िन्दगी में ही शैवलिनी का नरक-भोग शुरू हो गया है । कुछ देर बाद शैवलिनी ने कहा, "मैं मर नहीं सकूँगी । मुझे नरक का बड़ा भय हुआ है । मुझे बचना ही होगा । परन्तु मैं अकेली हूँ, मैं बारह साल किस तरह जिऊँगी ? मैं होश में और बेहोशी में सिर्फ़ नरक देख रही हूँ ।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "चिन्ता न करो, उपास और मानसिक कष्टों के कारण यह सब हुआ है । वैद्य इसे वायुरोग कहते हैं । तुम वेदग्राम जाकर गाँव के किनारे कुटी बनाओ । वहाँ सुन्दरी तुम्हारी देखरेख करेंगी—तुम्हारी दवा कर सकेंगी ।"

सहसा शैवलिनी ने आँखें मूँद लीं । देखा, गुहा के किनारे सुन्दरी खड़ी है, पत्थर में खोदी हुई; उँगली उठाये खड़ी है । देखा, सुन्दरी बहुत लम्बी है; क्रमशः ताड़ के पेड़ के बराबर हो गई, बड़ी भयङ्कर ! देखा, उसी गुफा के किनारे सहसा नरक की सृष्टि हुई—वही दुर्गन्ध, वही भयङ्कर अग्नि-गर्जन, वही ताप, वही शीत, वही साँपों का वन, वही बुरे कीटों से छाया अँधेरा आसमान । देखा, उसी नरक में पिशाच काठों की रस्सी और बिच्छुओं के बेंत हाथ में लिये उतरे—रस्सी से शैवलिनी को बाँध कर बिच्छुओं के बेतों से मारते मारते ले चले; ताड़ भर ऊँची पत्थर की सुन्दरी हाथ उठा कर कहने लगी, "मारो, मारो, मैंने मना किया था। मैं नाव से लौटाने गई थी, इसने मेरी बात नहीं मानी । मारो, जितने लगा सको, लगाओ । इसके पाप की मैं गवाह हूँ । मारो, मारो !" शैवलिनी हाथ जोड़कर मुँह उठाकर, सजल आँखों से सुन्दरी से मिन्नत करने लगी, सुन्दरी ने नहीं सुना, पुकारने लगी, "मारो, मारो !" शैवलिनी फिर उसी तरह स्थिर देखती हुई आँखें फैलाकर सूखे होठों से स्तम्भित की तरह रह गई । चन्द्रशेखर चिन्तित हुए । समझे, लक्षण अच्छे नहीं । कहा, "शैवलिनी, मेरे साथ आओ ।"

पहले शैवलिनी ने नहीं सुना । बाद को चन्द्रशेखर ने उसकी देह पर हाथ दो-तीन बार खींचते हुए कहा, "मेरे साथ आओ ।"

सहसा शैवलिनी उठकर खड़ी हो गई, बहुत डरी आवाज़ में कहा, "चलो, चलो, चलो, जल्दी चलो, जल्दी चलो, यहाँ से जल्दी चलो ।"

कहकर देर किये बिना गुफा के द्वार की तरफ़ दौड़ी, चन्द्रशेखर की प्रतीक्षा किये बिना द्रुत पद से चली, जल्द चलते हुए, गुफा के धुँधले प्रकाश में पैर में पत्थर लगा, रपटकर शैवलिनी गिर गई । फिर कोई शब्द नहीं, चन्द्रशेखर ने देखा, शैवलिनी फिर मूर्च्छित हो गई है ।

तब चन्द्रशेखर ने उसे गोद में उठा लिया और गुफा से बाहर निकल कर, जहाँ पर्वत के अङ्क से बड़ी क्षीण निर्झरणी निःशब्द जलोद्गार कर रही थी, वहाँ ले आये। मुँह पर छींटे मारने पर और खुली जगह में खुली हवा लगने पर शैवलिनी होश में आई, और आँखें खोलीं, पूछा "मैं कहाँ आई ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं तुम्हें बाहर ले आया हूँ ।"

शैवलिनी काँपी, फिर डरी। पूछा, "तुम कौन हो ?" चन्द्रशेखर भी डरे । कहा, "क्यों इस तरह कर रही हो ? मैं तुम्हारा पति हूँ, पहचान नहीं रही क्यों ?"

शैवलिनी ठहाका मारकर हँसी, कहा, "मेरे पति सोने की—मक्खी हैं, फूल-फूल पर घूमते हैं; इस थूहड़ के पेड़ में क्या दोस्त, तुम राह भूल कर आये हो ?—तुम लारेन्स फ़स्टर हो ?"

चन्द्रशेखर ने देखा; जिस देवी के प्रभाव मे यह मनुष्य-देह सुन्दर लगती है, वे शैवलिनी को छोड़े जा रही है—विकट उन्माद आकर उसके स्वर्ण-मन्दिर पर अधिकार कर रहा है । चन्द्रशेखर रोये। बड़े मीठे स्वर से, कितने आदर से फिर पुकारा, "शैवलिनी !"

शैवलिनी फिर हँसी; कहा, "शैवलिनी कौन है ? ठहरो, ठहरो, एक लड़की थी, उसका नाम 'शैवलिनी था, और एक लड़का था, उसका नाम प्रताप था। एक दिन रात को लड़का साँप बनकर वन में गया, लड़की मेंढक बनकर गई। साँप ने मेंढक को निगल लिया। मैंने अपनी आँखों देखा है। क्यों जी साहब, क्या तुम लारेन्स फ़स्टर हो ?"

चन्द्रशेखर ने गद्‌गद कण्ठ से, कातर होकर पुकारा, "गुरुदेव ! यह क्या किया ? यह क्या किया ?"

शैवलिनी ने गीत गाया—

"मेरे मन के चोर तुम्ही हो !
मेरी आँखों के आँसू में,
दिल की हिलती डोर तुम्हीं हो।"

कहने लगी, "मन के चोर कौन ? चन्द्रशेखर। 'हिलती डोर' किसके लिए ? चन्द्रशेखर के लिए। क्यों डोर हिली ? नहीं मालूम। तुम चन्द्रशेखर को पहचानते हो ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं ही चन्द्रशेखर हूँ।"

शैवलिनी बाघिन की तरह टूटकर चन्द्रशेखर के गले से लिपट गई, कोई बात न कहकर रोने लगी—कितना रोई—उसके आँसुओं से चन्द्रशेखर की पीठ, कण्ठ, वक्ष, वस्त्र, बाहु प्लावित हो गये; चन्द्रशेखर भी रोये। शैवलिनी रोती हुई कहने लगी, "मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "चलो।"

शैबलिनी ने पूछा, "मुझे मारोगे नही ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "नहीं।"

दीर्घ श्वास छोड़कर चन्द्रशेखर उठे। शैवलिनी भी उठी। गिरे मन से चन्द्रशेखर चले—पागल शैवलिनी पीछे पीछे चली—कभी हँसने लगी—कभी रोने लगी—कभी गाने लगी।

———

पञ्चम खण्ड

प्रच्छादन

पहला परिच्छेद

अमियट् का परिणाम

अँगरेज़ों की नावें मुर्शिदाबाद पहुँची। मीरक़ासिम के नायब मुहम्मद तक़ी खाँ के पास ख़बर आई कि अमियट् पहुँचा है।

बड़े समारोह से मुहम्मद तक़ी ने अमियट् से आकर मुलाक़ात की। अमियट् ख़ुश हुए। मुहम्मद तकी खाँ ने अन्त में अमियट् को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। अमियट् ने मजबूरी से मंज़ूर किया, लेकिन प्रसन्नतापूर्वक नही। इधर मुहम्मद तक़ी ने, दूर, अलक्षित रूप से, पहरेदार लगा रक्खे कि अँगरेज़ों की नावें चली न जायँ।

मुहम्मद तक़ी के चले जाने पर अँगरेज़ परामर्श करने लगे कि निमंत्रण में जाना चाहिए या नही। गल्स्टन् और जान्सन् ने यह मत व्यक्त किया कि डर किसे कहते हैं, यह अँगरेज़ नही जानते और जानना चाहिए भी नही। इसलिए न्योते जाना चाहिए। अमियट् ने कहा, "जब इन लोगों से लड़ाई में उतर रहे हैं और असद्भाव जहाँ तक होने थे, हुए हैं, तब इन लोगों से खाना-पीना क्या है?" अमियट् ने निश्चय किया कि न्योते नहीं जायँगे।

इधर जिस नाव पर दलनी और कुलसूम क़ैद रक्खी गई थीं, उस नाव पर भी न्योते की ख़बर पहुँची। दलनी और कुलसूम कानों में बतलाने लगीं। दलनी ने कहा, "कुलसूम, सुन रही हो? जान पड़ता है, छुटकारा नज़दीक है।

कु०—क्यों ?

द०—तू जैसे कुछ भी नहीं समझती। जो लोग नव्वाब की बेगम को क़ैद कर लाये हैं, उन्हें नव्वाब की तरफ़ से जो इतने आदर से न्योता दिया गया है, इसका कोई गहरा भीतरी मतलब है। जान पड़ता है, आज अँगरेज़ों की शामत है।

कु०—इसी से क्या आप इतनी खुश हैं ?

द०—हाँ, लेकिन खूनखराबा न हो, तो अच्छा; फिर भी जिन लोगों ने बिला वजह हमें क़ैद किया है, उनकी मौत से ही अगर हमें छुटकारा मिले तो हमें खुशी ज़रूर है।

कु०—छुटकारे के लिए इतनी उतावली क्यों है ? हमें क़ैद कर रखने के अलावा मालूम देता है, इनका दूसरा मतलब नहीं। हम पर कोई जुल्म नहीं कर रहे, सिर्फ़ रोक रक्खा है। हम औरतों के लिए, जहाँ जायँगे, यही हाल होगा।

दलनी को बड़ा ग़ुस्सा आया। कहा, "अपने महल में मैं बेगम हूँ, अँगरेज़ों की नाव में बाँदी। क्या तू बतला सकती है कि हमें क्यों इन लोगों ने पकड़ रक्खा है ?"

कु०—हुज़ूर से पहले ही अर्ज़ कर चुकी हूँ। मुङ्गेर में जिस तरह हे साहब अँगरेज़ों के ज़ामिन होकर हिरासत में हैं, इसी तरह हम भी नव्वाब साहब के ज़ामिन के तौर पर अँगरेज़ों के यहाँ हिरासत में हैं। हे साहब के छुटने पर हम भी छोड़ दियें जायँगे। हे साहब का कुछ बुरा हुआ तो हमारा भी होगा, नहीं तो कोई डर नहीं।

दलनी को और ग़ुस्सा आया, कहा, "हम तेरे हे साहब को नहीं पहचानते, तेरी अँगरेज़ों की तरफ़दारी नही सुनना चाहते, छोड़ दी जायगी तो भी तू शायद नहीं जायगी ?"

कुलसूम ग़ुस्से में आकर हँसकर बोली, "अगर मैं नहीं जाऊँगी तो आप मुझे छोड़कर चली जाइएगा।"

दलनी का ग़ुस्सा बढ़ने लगा। कहा, "यह भी चाहिए क्या ?"

कुलसूम गम्भीर होकर बोली, "क़िस्मत का लिखा कोई पढ़ पाता है ?"

भौंहें चढ़ाकर दलनी ने मुट्ठी बाँधकर ताव में आकर हाथ उठाया। लेकिन घूँसा मारा नहीं, जमा कर रक्खा। अपने कान के पास तक वह घूँसा उठाया था, घुंघराली काली लट से कान खिले फूल पर बैठे भौंरे-सा सोह रहा था, उसके नजदीक मुलायम दलों की बँधी कली जैसी मुट्ठी रखकर पूछा, "तुझे अमियट् दो दिन क्यों बुला ले गया था, सच सच कह तो।"

कु०—सच सच तो कहा है, आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं हो रही, यह मालूम करने के लिए। अँगरेज़ लोग यह चाहते हैं कि जब तक हम अँगरेज़ों की नाव पर रहें, सुख से रहें। ख़ुदा करे, अँगरेज़ हमें न छोड़ें।

दलनी ने घूँसा और ऊँचा उठाकर कहा, "ख़ुदा करे, तेरा जनाज़ा निकले।"

कु०—अँगरेज़ छोड़ देंगे तो हम फिर नव्वाब साहब के पञ्जे में फँसेंगे। नव्वाब साहब तुम्हें माफ़ भी कर दें, मुझे नहीं बख़्शेंगे, यह साफ़-साफ मेरी समझ में आ रहा है। मेरे मन में यह आता है कि कहीं सहारा मिले तो नव्वाब साहब के सामने हाज़िर न होऊँ।

ग़ुस्से में दलनी का गला भर आया, बोली, "मेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं। मरना होगा तो उन्हीं के क़दमों में मरूँगी।"

इधर अमियट् ने अपने मातहत सिपाहियों को तैयार होने का हुक्म दिया। जान्सन् ने कहा, "यहाँ हमारी उतनी ताक़त नहीं, नावें रेज़ीडेन्सी के पास ले चलने से नहीं बनेगा ?"

अमियट् ने कहा, "जिस दिन देशी आदमियों के डर से एक अँगरेज़ भगेगा, उसी दिन भारतवर्ष में अँगरेज़ी साम्राज्य की स्थापना

की आशा लुप्त हो जायगी । यहाँ से नावें खोलने पर ही मुसलमान समझेंगे, हम डरकर भगे । खड़े खड़े मरेंगे, यह भी अच्छा है, फिर भी डरकर नहीं भगेंगे; लेकिन फ़स्टर बीमार है । हथियार हाथ में लेकर मर नहीं सकता, इसलिए उसे रेज़ीडेन्सी जाने के लिए कहो । उसकी नाव पर बेगम और दूसरी औरत को चढ़ा दो और दो सिपाही साथ दो, झगड़ेवाले मुक़ाम पर उनका रहना अनावश्यक है।"

सिपाही तैयार हो गये । अमियट् की आज्ञा के अनुसार नावों के भीतर सब छिप कर बैठे । टट्टो के घेरेवाली नाव में सहज ही छेद मिलता है, हर सिपाही एक-एक छेद के पास बन्दूक़ लेकर बैठा । अमियट् की आज्ञा के अनुसार दलनी और कुलसूम फ़स्टर की नाव पर चढ़ी । दो सिपाहियों ने साथ साथ फ़स्टर की नाव खोल दी । देखकर मुहम्मद तक़ी के पहरेवाले उन्हें ख़बर देने गये ।

यह संवाद सुनकर और अँगरेज़ों के आने का समय अतीत हुआ देखकर मुहम्मद तक़ी ने अँगरेज़ों को साथ ले आने के लिए दूत भेजा । अमियट् ने जवाब में कहा, कोई वजह है जिससे वे लोग नाव छोड़ना नहीं चाहते ।

दूत ने नाव से उतरकर कुछ दूर आकर एक ख़ाली आवाज़ की । इसी आवाज़ के साथ किनारे से दस-बारह बन्दूकें छूटीं । अमियट् ने देखा, नाव पर गोलियाँ चल रही हैं और जगह जगह नाव के भीतर गोलियाँ पहुँच रही हैं ।

तब अँगरेज़ सिपाहियों ने भी जवाब दिया । दोनों तरफ़ के लोग एक दूसरे पर गोली चलाने लगे, इससे बड़ा शोरगुल मचा। परन्तु दोनों तरफ़ के लोग छिपे हुए थे । मुसलमान किनारे के वरों की आड़ में छिपे थे; अँगरेज़ और उनके सिपाही नावों के भीतर छिपे थे । ऐसी लड़ाई में बारूद के ख़र्च के अलावा दूसरे फल की कोई संभावना जल्द नहीं देखी गई ।

तब मुसलमान आश्रय छोड़कर तलवार और बल्लम हाथ में लेकर, आवाज़ लगाते हुए, अमियट् की नाव की ओर दौड़ पड़े। देखकर स्थिरप्रतिज्ञ अँगरेज़ डरे नहीं।

स्थिर चित्त से, नाव के भीतर से, किनारे जल्द-जल्द उतरने-वाले मुसलमानों को अमियट्, गल्स्टन् और जान्सन् बन्दूक़ का निशाना बनाने और हर वार पर एक एक को ज़मीन पर सुलाने लगे।

परन्तु जिस तरह तरङ्ग पर तरङ्ग टूटती है, उसी तरह मुसलमान सिपाहियों के एक दल के बाद दूसरा दल उतरने लगा। तब अमियट् ने कहा, "अब हमारे बचने की कोई सूरत नहीं। आओ, हम लोग दुश्मनों की जान लेते हुए जान दें।"

अब तक मुसलमान अमियट् की नाव पर चढ़ गये। तीन अँगरेज़ों ने मिलकर एक साथ बन्दूकें दागी। त्रिशूल से छिदे जैसे, नाव पर चढ़े मुसलमान तितर-बितर होकर नाव से पानी में गिरे।

और भी मुसलमान नाव पर चढ़े। कुछ और मुसलमान गुर्ज-मोग्दर लेकर नीचे नाव पीटने लगे। नाव का तला टूट गया, जिससे नाव में कलकलाहट के साथ पानी भरने लगा।

अमियट् ने साथियो से कहा, "पानी में डूबकर जानवरों की तरह क्यों जान दें? चलो, बाहर निकलें, वीर की तरह हथियार लिये हुए काम आयें।"

तब तलवार निकाल कर तीन अँगरेज़ बिना डरे हुए, उन अगणित मुसलमानों के सामने आकर खड़े हुए। एक मुसलमान ने सलाम करके अमियट् से कहा, "क्यों जान दे रहे हैं? हमारे साथ आइए।"

अमियट् ने कहा, "जान ही देंगे। यहाँ हमारे जान देने पर हिन्दोस्तान मे जो आग लगेगी, उससे मुसलमानी सल्तनत जलकर ख़ाक हो जायगी। हमारे ख़ून से ज़मीन गीली होगी तो इससे तीसरे जार्ज का राजकीय झण्डा सहज ही गड़ सकेगा।"

"तो दो जान !" कहकर पठान ने अमियट् पर तलवार का वार किया। सर के दो टुकड़े हो गये। देखकर गल्स्टन् ने झपाटे से पठान पर वार किया; उसका सर धड़ से जुदा हो गया।

तब दस बारह मुसलमान गल्स्टन् को घेरकर वार पर वार करने लगे और बहुत-से आदमियों के वारों से घायल होकर गल्स्टन् और जान्सन् दोनों हमेशा के लिए नाव पर सोये।

इससे पहले ही फ़स्टर नाव खोलकर चला गया था।

दूसरा परिच्छेद

फिर वही

जब रामचरण की गोली की मार से लारेन्स् फ़स्टर गङ्गा में गिर गया था, तब, प्रताप के बजरा खोलकर चले जाने के बाद, हथियारवाली नाव के माझियों ने पानी में कूदकर फ़स्टर को निकाला था। इसी नाव के पास से फ़स्टर बहे जा रहे थे। उन लोगों ने फ़स्टर को निकालकर नाव पर रखकर अमियट् को खबर दी थी।

अमियट् उस नाव पर आये। देखा, फ़स्टर अचेत हैं, लेकिन जान नहीं निकली। मस्तक पर गोली लगी थी, इसलिए चेतना जाती रही थी। फ़स्टर के मरने की ही सम्भावना अधिक है, लेकिन बचें तो बच भी सकते हैं। अमियट् चिकित्सा जानते थे, यथारीति उन्होंने उनकी चिकित्सा शुरू की। बकाउल्ला के बतलाये पते से चलकर फ़स्टर की नाव खोजकर घाट पर ले आये। जब अमियट् मुङ्गेर से चले थे, तब मृतवत् फ़स्टर को उस नाव पर ले आये थे।

फ़स्टर की आयु थी, वे चिकित्सा से बच गये। फिर आयु थी, मुर्शिदाबाद में मुसलमानों के हाथ बचे, परन्तु इस समय वे रुग्ण

हैं, बलहीन और तेजरहित हैं, अब और वह हिम्मत, वह दम्भ नहीं। इस समय वे प्राणों के भय से डरे हुए हैं, भग रहे है। सर पर चोट आने के कारण बुद्धि भी कुछ विकृत हो गई है।

फ़स्टर जल्द जल्द नाव खेवा रहे थे, डर था कि कही मुसलमान पीछे न लगें। पहले उन्होंने सोचा था, क़ासिमबाज़ार की रेज़ीडेन्सी में आश्रय लेंगे, लेकिन डरे कि कही मुसलमान रेज़ीडेन्सी पर धावा न बोल दें, इसलिए वह इरादा उन्होंने छोड़ दिया। यहाँ फ़स्टर ने सही सही सोचा था। मुसलमान उसके बाद ही रेज़ीडेन्सी पर चढ़ गये और उसे लूट लिया।

फ़स्टर द्रुतगति से क़ासिमबाज़ार, फरासडाँगा, सैदाबाद पार कर गये। फिर भी डर नहीं छूटा। जो भी नाव पीछे देख पड़ती थी, सोचते थे, मुसलमानों की नाव आ रही है। देखा, एक छोटी नाव ने किसी तरह साथ नही छोड़ा।

फ़स्टर तब बचने का उपाय सोचने लगे। भ्रान्त बुद्धि में बहुत तरह की बातें उठने लगीं। एक दफा सोचा, नाव छोड़कर किनारे चढ़कर भगें। फिर सोचा, भग नहीं सकेंगे, वह बल अब नही। फिर सोचा, पानी में डूब जायँ; बाद को सोचा, पानी में डूबे तो बचे कहाँ? फिर सोचा, इन दोनों औरतों को पानी में फेंककर नाव हलकी करें—नाव और तेज़ चलेगी।

अकस्मात् उनमें एक दुर्बुद्धि आ गई। इन स्त्रियों के कारण मुसलमान उनके पीछे लगे हैं, यह उनका दृढ़ विश्वास हुआ। दलनी नव्वाब की बेगम है, यह वे सुन चुके थे। सोचा, बेगम के लिए ही मुसलमान अँगरेज़ों की नाव का पीछा किये हुए हैं; अस्तु बेगम को छोड़ देने पर और कोई ख़तरा नही रहेगा। उन्होंने निश्चय किया कि दलनी को उतार देंगे।

दलनी से कहा, "वह एक छोटी-सी नाव हमारे पीछे पीछे आ रही है, देखा है?"

दलनी ने कहा, "देख रही हूँ।"

फ़स्टर—वह तुम लोगों के आदमियों की नाव है, तुम्हें छीन लेने के लिए आ रहे हैं।

क्या ऐसा सोचने का कोई कारण था ? कुछ भी नहीं, केवल फ़स्टर की विकृत बुद्धि ही इसका कारण है। उसने रस्सी में साँप देखा। दलनी अगर सोचकर समझती तो इस बात पर सन्देह करती। परन्तु जो जिसके लिए व्याकुल होती है, वह उसके नाम से ही मुग्ध होती है, आशा से अन्धी होकर विचार से मुँह मोड़ती है। आशा से मुग्ध होकर दलनी ने उस बात पर विश्वास किया, कहा, "तो क्यों उस नाव पर हमें चढ़ा नहीं देते ? तुम्हें बहुत-सा रुपया देंगे।"

फ़०—ऐसा मुझसे नहीं होगा। मेरी नाव अगर उन लोगों ने पकड़ ली तो मेरी जान के गाहक हो जायँगे।

द०—मैं मना करूँगी।

फ़०—तुम्हारी बात नहीं मानेंगे। तुम्हारे देश के आदमी स्त्री की बात पर ध्यान नहीं देते।

व्याकुलता के कारण दलनी का ज्ञान जाता रहा। उसने भला-बुरा सोचकर नहीं देखा। अगर यह अपनी नाव न होगी तो क्या होगा, यह बात उसके मन में नहीं आई। व्याकुलता के कारण विपद् मोल ली, कहा, "तो हमें किनारे उतारकर तुम चले जाओ।"

फ़स्टर आनन्दपूर्वक राज़ी हो गया। नाव किनारे लगाने का हुक्म दिया।

कुलसूम ने कहा, "मैं नहीं उतरूँगी। मैं नव्वाब साहब के हाथ पड़ूँगी तो मेरी क़िस्मत में क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। मैं साहब के साथ कलकत्ता जाऊँगी। वहाँ मेरी जान-पहचान के आदमी हैं।"

दलनी ने कहा, "तू फ़िक्र न कर। अगर मैं बचूँगी तो तुझे भी बचाऊँगी।"

कुलसूम--तुम बचो भी।

कुलसूम किसी तरह राज़ी नहीं हुई। दलनी ने बड़ी आरजू-मिन्नत की, उसने एक भी नहीं सुनी।

फ़स्टर ने कुलसूम से कहा, "नहीं मालूम, अगर तुम्हारे लिए नाव पीछे लगे। तुम भी उतरो।"

कुलसूम ने कहा, "अगर मुझे छोड़ोगे तो मैं उस नाव पर चढ़कर वही करूँगी जिससे नाववाले तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

डरकर फ़स्टर ने और कुछ नहीं कहा। दलनी कुलसूम के लिए रोकर नाव से उठी। फ़स्टर उतारकर नाव लेकर चला गया। उस समय सूर्यास्त के लिए कुछ देर है।

फ़स्टर की नाव क्रमशः निगाह से ओझल हो गई। जिस छोटी नाव को सरकारी समझकर फ़स्टर ने दलनी को उतार दिया था, वह नाव भी पास आई। प्रतिक्षण दलनी सोचने लगी कि नाव अब उसे चढ़ा लेने के लिए किनारे लगेगी, परन्तु नाव किनारे नहीं लगी। तब उसे नाववालों ने देखा है या नहीं, इस सन्देह से दलनी आँचल ऊँचा उठाकर हिलाने लगी, फिर भी नाव नहीं लौटी, खेई हुई निकल गई। तब दलनी के मन में जैसे बिजली कौंध गई।--यह नाव सरकारी है, यह कैसे मैं समझी! दूसरे की नाव हो सकती है। दलनी तब पागल की तरह ऊँचे स्वर से नाव के मल्लाहों को पुकारने लगी। "इसमें जगह नहीं" कहकर वे लोग चले गये।"

दलनी के सिर पर बिजली गिरी, फ़स्टर की नाव तब निगाह से ओझल हो चुकी थी, फिर भी वह किनारे किनारे दौड़ी, उसे पकड़ सकेगी यह सोचकर दलनी किनारे किनारे दौड़ी। परन्तु बहुत दूर तक दौड़कर भी दलनी नाव नहीं पकड़ सकी। पहले ही संध्या हो गई थी, इस समय अन्धकार हो गया। गङ्गा के ऊपर अब कुछ देख नहीं पड़ता, अँधेरे में केवल वर्षा के नये जल के प्रवाह की कल-कल

ध्वनि सुन पड़ती है। दलनी तब हताश होकर उखड़े हुए छोटे पेड़ की तरह बैठ गई ।

कुछ देर बाद, यह सोचकर कि गङ्गा के गर्भ में रहने से कोई फल नहीं, उठकर धीरे-धीरे दलनी ऊपर चढ़ी । अँधेरे में चढ़ने की राह नही देख पड़ती । दो-एक दफे गिर गिरकर उठी । उठकर नक्षत्रों के क्षीण प्रकाश में चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखा। देखा, किसी तरफ़ गाँव का कोई चिह्न नही है—केवल अनन्त प्रान्तर है और वह कलनादिनी नदी । आदमी की तो बात ही नही, किसी तरफ़ प्रकाश नही देख पड़ता, गाँव नही देख पड़ता, पेड़ नही देख पड़ता, रास्ता नहीं देख पड़ता, स्यार और कुत्ते के सिवा दूसरा जानवर नहीं देख पड़ता, कलनादिनी नदी के प्रवाह में नक्षत्र नाच रहे हैं, देख पड़ता है । दलनी ने सोचा, मृत्यु निश्चित है ।

वहीं प्रान्तर में नदी से कुछ दूर पर दलनी बैठी । पास झिल्ली की झनकार सुनाई दी, पास ही स्यार बोलने लगे । रात क्रमशः गहरी हो गई। अँधेरा क्रमशः और गहरा हुआ । रात के दूसरे पहर में दलनी ने बहुत डरकर देखा, उसी प्रान्तर में एक दीर्घाकार पुरुष अकेला घूम रहा है, बिना कुछ बोले वह लम्बा आदमी दलनी की बग़ल में आकर बैठा ।

फिर वही ! यही दीर्घकाय पुरुष शैवलिनी को उठाकर धीरे-धीरे अँधेरे में पहाड़ पर चढ़े थे ।

तीसरा परिच्छेद

नृत्य-गीत

मुङ्गेर की प्रशस्त अट्टालिका में स्वरूपचन्द जगतसेठ और महताबचन्द जगतसेठ दो भाई रह रहे थे । वहाँ रात को हज़ार दीपक

जल रहे थे। वहाँ सङ्गमारवर के बने शीतल मण्डप में, नर्तकी के रत्नाभरणों में उस दीपमाला की असंख्य किरणें प्रतिफलित होती थीं। पानी में पानी रुकता है और उज्ज्वलता में उज्ज्वलता। दीप-रश्मियाँ पत्थर के सफेद खम्भों में मोती जडी चमकती ज़रीन मसनद में, हीरों के उज्ज्वल इत्रदानों में, सेठों के कण्ठों की, मोतियों की श्वेत मालाओं में और नर्तकी की कलाइयों, कण्ठ, केश और कानों के आभरणों में झलमला रही थी। साथ मधुर गीतशब्द उठ रहे थे; उज्ज्वल और मधुर मिल रहे थे। जब रात को नीले आसमान में चाँद उगता है, तब उज्ज्वल ओर मधुर मिलते हैं। जब सुन्दरी के सजल नील इन्दीवरनयनों में बिजली-सा चकित-कटाक्ष निकलता है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब स्वच्छ नीले सरोवर पर लेटी हुई खिलने को होती हुई नलिनी के दल बालसूर्य की स्वर्णोज्ज्वल किरणों से खुलते रहते हैं,—नील जल की छोटी छोटी तरङ्गों पर लम्बी किरणें पड़ती हुई, कमल के पत्तो पर पड़ी बूँदों को चमकाकर, जलचर विहङ्गों के कलकण्ठ झङ्कृत कर, कमलों के होंठ खोलकर देख जाती हैं, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं और जब तुम्हारी गृहिणी के पदपद्मों में डायमन्ड-कटे कड़ेरूपी सूर्य लोटते रहते हैं, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब सन्ध्या-समय आकाश-मण्डल में सूर्य का तेज डूबा जा रहा है देखकर नीलिमा उसे पकड़ने के लिए पीछे पीछे दौड़ती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं; और जब तुम्हारी गृहिणी कानों के चम्पे झुमाती तिरस्कार करती हुई तुम्हारे पीछे पीछे दौड़ती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब चाँदनी से चमकते गङ्गाजल पर हवा के झकोरे से फेन के साथ तरङ्गें टूटती हुईं, रश्मियों से जलती रहती हैं, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं,—और जब स्पार्क्लङ्ग शैम्पेन उमड़कर स्फटिक-पात्र में चमकती रहती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब चाँदनी रात से दक्खिनी हवा मिलती है, तब

उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब बर्फ़ीवाली फलाहार की पत्तल पर रजतमुद्रा दक्षिणा मिलती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। जब सुबह की सूर्य-किरणों से .खुश होकर वसन्त की कोयल कूकती रहती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलने हैं, और जब प्रदीपमाला के प्रकाश में रत्नाभरणों से भूषित होकर गायिका तान अलापती है, तब उज्ज्वल और मधुर मिलते हैं। उज्ज्वल और मधुर मिले; परन्तु सेठों के अन्तःकरण में उसका कुछ भी नहीं समाया। उनके अन्तः-करण में समाये गुरगन खाँ।

बङ्गाल में लड़ाई की आग इस समय भड़क उठी है। कलकत्ते से हुक्म पहुँचने के पहले ही पटने के एलिस साहब ने पटने के क़िले पर आक्रमण कर दिया था। पहले उन्होंने क़िले पर अधिकार कर लिया था, परन्तु जब मुङ्गेर से मुसलमानों की सेना भेजी गई और वह पटने की मुसलमान-सेना से आकर मिली, तब पटना फिर मीरक़ासिम के अधिकार में आगया। एलिस आदि पटने के अँगरेज़ मुसलमानों से गिरफ़्तार होकर मुङ्गेर लाये गये। अब दोनों पक्ष सही-सही लड़ाई की तैयारी कर रहे थे। सेठों के साथ गुरगन खाँ उसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। नाच-गाना केवल उपलक्ष था। जगतसेठ या गुरगन खाँ कोई सुन नहीं रहे थे। सब लोग ऐसे मौक़े पर जैसा करते हैं, वे भी वैसे ही गुप्त बातचीत कर रहे थे। नहीं तो सङ्कट के समय सङ्गीत की अवतारणा कौन करता है?

गुरगन खाँ की मनोकामना सिद्ध हुई। उन्होंने सोचा, दोनो तरफ़ के लोग लड़कर कमज़ोर पड़ेंगे तब दोनों को पराजित कर वे स्वयं बङ्गाल के अधीश्वर होंगे। परन्तु इस अभिलाषा की सिद्धि के लिए पहले आवश्यक है कि सेना उनके वश रहे। सेना अर्थ के बिना वशीभूत नहीं होगी, सेठ-कुबेरों के सहाय न होने पर अर्थ-

संग्रह नहीं होता, अतएव सेठों से परामर्श करना गुरगन खाँ के लिए अत्यन्त आवश्यक हुआ।

इधर क़ासिमअली खाँ भी अच्छी तरह जानते थे कि जिस पक्ष पर ये दोनों कुवेर अनुग्रह करेंगे, उसी की विजय होगी। जगत सेठ मन-ही-मन उनका हित नहीं चाहते, यह भी वे समझ गये थे। क्योंकि, उन्होंने सेठों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। सन्देह होने के कारण उन्हें मुङ्गेर में क़ैद करके रक्खा था। सुयोग मिलने पर वे उनके विरोधी से मिलेंगे, यह निश्चित कर वे सेठों को क़िले में क़ैद करने की कोशिश कर रहे थे। सेठों को यह मालूम हो गया था। अब तक डरकर उन्होंने मीरक़ासिम के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की थी, परन्तु अब बचने की दूसरी सूरत नहीं रह गई थी, इसी लिए गुरगन खाँ से मिले थे। मीरक़ासिम की मौत दोनों का लक्ष्य था।

परन्तु बिना कारण के गुरगन खाँ से मुलाक़ात करने पर नव्वाब को सन्देह हो सकता है, इस विचार से सेठों ने यह उत्सव मनाया था, और गुरगन खाँ तथा दूसरे राजकर्मचारियों को आमन्त्रित किया था।

गुरगन खाँ नव्वाब की अनुमति लेकर आये थे और दूसरे कर्मचारियों से अलग बैठे थे। जगत सेठ लोग जैसे सबके पास एक एक दफ़ा आकर बात-चीत करते थे, गुरगन खाँ के पास भी उसी तरह, बहुत देर तक नहीं रह रहे थे, लेकिन बातचीत दूसरों के न सुने जानेवाले स्वर से कर रहे थे। बातचीत इस प्रकार है—

गुरगन खाँ कह रहे थे—"आप लोगों के साथ मैं एक कोठी खोलना चाहता हूँ, आप लोग हिस्सेदार बनना चाहते हैं?"

महताबचन्द—क्या उद्देश है?

गुर०—मुङ्गेर की बड़ी कोठी बन्द कराना चाहता हूँ।

मह०—मञ्जूर है। ऐसा एक नया कारोबार जब तक नहीं शुरू किया जाता, हमारे लिए दूसरा उपाय नहीं है।

गुरगन खाँ ने कहा, "अगर आप लोग स्वीकृत होंगे तो रुपये का इन्तज़ाम आप लोगों को ही करना होगा, मैं शारीरिक श्रम करूँगा।"

इसी समय मनिया बाई ने पास आकर सनदी ख़याल गाया—"सीखे हो छल छैल भले" आदि। सुनकर महताब ने हँसकर कहा, "किसे कहती है ? ख़ैर हम राज़ी हैं, हमारा अस्ल और सूद अगर बचा रहे तो हम और नहीं चाहते, हाँ, किसी आफ़त में न पड़े।"

इस तरह एक तरफ़ बाई जो केदारा, हम्बीर, छायानट आदि राग अलाप रही थी, और दूसरी ओर गुरगन खाँ रुपया, नुक़सान और सलामी आदि बँधी बातों मे अपना परामर्श निश्चित कर रहे थे। बातचीत स्थिर हो जाने पर गुरगन खाँ कहने लगे, "एक नया व्यापारी कोठी खोल रहा है, आप लोगों ने सुना है ?"

मह०—नहीं। देशी है या विलायती ?

गुर०—देशी।

मह०—कहाँ ?

गुर०—मुङ्गेर से मुर्शिदाबाद तक सब जगह जहाँ कही पहाड़ है, जङ्गल है, मैदान है, वहीं उसकी कोठी तैयार हो रही है।

मह०—मालदार कैसा है ?

गुर०—अभी वैसा मालदार नहीं, लेकिन क्या होता है, कहा नहीं जा सकता।

मह०—किसके साथ उसका लेन-देन है ?

गुर०—मुङ्गेर की बड़ी कोठी के साथ।

मह०—हिन्दू है या मुसलमान ?

गुर०—हिन्दू।

मह०—नाम क्या है ?

गुर०—प्रतापराय।

मह०—रहनेवाला कहाँ का है ?

गुर०—मुर्शिदाबाद के पास का ।

मह०—नाम सुना है, वह साधारण आदमी है ।

गुर०—बड़ा जाबिर आदमी है ।

मह०—वह एकाएक क्यों ऐसा कर रहा है ?

गुर०—कलकत्ते की बड़ी कोठी से नाराज़ होकर ।

मह०—उसे मुट्ठी में करना है—वह किसके वश है ?

गुर०—क्यों वह ऐसा कर रहा है, यह बिना मालूम किये नहीं कहा जा सकता । अगर रुपये के लिए मुलाज़िम के तौर पर काम शुरू किया हो तो उसे खरीदने में देर नहीं होगी । ज़र-ज़मीन और ताअल्लुका भी हम दे सकते है । लेकिन अगर दूसरा मतलब हो तो ?

मह०—और कौन-सा मतलब हो सकता है ? क्यों प्रतापराय को यह ख़ब्त सवार हुआ ?

बाई जी उस वक़्त गा रही थी—"गोरे गोरे मुख पर बेसर सोहै ।"

महताबचन्द ने कहा, "क्या यही है ? किसका गोरा मुख ?"

चौथा परिच्छेद

दलनी ने क्या किया

महाकाय पुरुष चुपचाप दलनी के पास आकर बैठे ।

दलनी रो रही थी, डरकर उसने रोना बन्द किया और निस्पन्द हो रही । आगन्तुक भी चुप रहे ।

महम्मद तक़ी को गुप्त आदेश था कि अँगरेज़ों की नाव से दलनी बेगम को छुड़ाकर मुंगेर भेजेंगे । महम्मद तक़ी ने सोचा था

कि अँगरेज़ बन्दी या हत होंगे तो बेगम खुद-ब-खुद उन्हे प्राप्त हो जायँगी, इसलिए अनुचरों को बेगम के सम्बन्ध में कोई विशेष उपदेश देना उन्होंने आवश्यक नही सोचा। बाद को जब उन्होंने देखा, हत अँगरेजो की नाव में बेगम नहीं, तब उन्होने निश्चित किया कि बहुत बड़ी विपत्ति आ सकती है। उनकी शिथिलता या लापरवाही से नव्वाब रुष्ट होकर कोई भी उत्पात कर सकते है। इस शंका से डरकर एक हिम्मत के सहारे महम्मद तक़ी ने नव्वाब को धोखा देने की सोची। लोगों की ज़बानी उस समय यह बात फैली हुई थी कि लड़ाई छिड़ते ही अँगरेज़ मीरजाफर को कैद से निकालकर फिर मसनद पर बैठालेगे। अगर अँगरेज़ों की विजय हुई तो मीरक़ासिम की निगाह में इस भेद के खुल जाने पर भी कोई आफ़त सर नही आयेगी। जान बचेगी तो लाखों पायेंगे। बाद को अगर मीर-क़ासिम के हाथ मैदान रहा तो ऐसी तरकीब की जा सकती है जिससे उन्हें सच्ची घटना मालूम न हो सके। फ़िलहाल कोई कड़ा हुक्म न आये, यह देखना है। ऐसे विचार लड़ाकर तक़ी इस रात को झूठी बातों से भरी एक अर्ज़ी नव्वाब के पास भेज रहे थे।

महम्मद तक़ी ने नव्वाब को लिखा कि बेगम अमियट् की नाव पर मिली थी। तक़ी ने उन्हे सम्मानपूर्वक क़िले मे लाकर रक्खा था, परन्तु विशेष आदेश के बिना उन्हें नव्वाब साहब के पास भेज नही सकते। अँगरेज़ों के साथवाले ख़ानसामा, मल्लाह, सिपाही आदि जो जी रहे हैं, उन लोगों की ज़बानी मालूप हुआ है कि बेगम अमियट् की रखेली की तरह उसकी नाव पर रहती थीं। दोनों एक पलंग पर लेटते थे। बेगम खुद ये बातें स्वीकार कर रही हैं। उन्होंने इस समय क्रिस्तान धर्म ग्रहण कर लिया है। वे मुगेर नही जाना चाहती। कहती है, मुझे छोड़ दो। मै कलकत्ता जाकर अमियट् साहब के मित्रों में रहूँगी। अगर छोड़ नही दोगे तो मैं भग जाऊँगी। अगर मुगेर भेजोगे तो जान पर खेल जाऊँगी। ऐसी

हालत मे उन्हें मुंगेर भेजें या यहाँ रक्खे या छोड़ दें, इसकी आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। आज्ञा मिलने पर उसी के अनुसार काम करेंगे। इस आशय का तक़ी ने पत्र लिखा।

अश्वारोही दूत उसी रात को पत्र लेकर मुंगेर रवाना हुआ।

कोई कोई कहते हैं, दूर की न जानी हुई अमंगल घटना का हमारे मन पर प्रभाव पड़ता है। यह बात सच है, ऐसा नहीं; परन्तु जिस मुहूर्त्त मुर्शिदाबाद से अश्वारोही दूत दलनी के विषय का पत्र लेकर मुंगेर के लिए रवाना हुआ, उसी क्षण दलनी का शरीर रोमाञ्चित हुआ, उसी क्षण उनके पास के बलिष्ठ पुरुष ने पहले बात की। पुरुष के कण्ठ-स्वर से हो या अमंगल की सूचना से हो, जिस तरह भी हो, उसी मुहूर्त्त दलनी का शरीर रोमाञ्चित हुआ।

पास खड़े हुए पुरुष ने कहा, "हम तुम्हें पहचानते है, तुम दलनी बेगम हो।"

दलनी काँपी।

पास के पुरुष ने फिर कहा, "हमें मालूम है, तुम इस एकान्त मे दुरात्माओ से परित्यक्त हुई हो।"

दलनी के आँसू फिर बह चले। आगन्तुक ने पूछा, "इस समय तुम कहाँ जाओगी?"

एकाएक दलनी का भय दूर हो गया। भय के दूर होने का उसे कारण मिला था। वह फिर रोई। प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा। दलनी ने कहा, "कहाँ जाऊँगी? मेरे जाने की जगह नही। एक जगह जाने की है, लेकिन वह बहुत दूर है; कौन मुझे वहाँ ले जायगा?"

आगन्तुक ने कहा, "तुम नव्वाब के पास जाने की इच्छा छोड़ो।"

दलनी को उत्कण्ठा हुई, आश्चर्य हुआ, पूछा, "क्यों?"

"अमङ्गल होगा।"

दलनी काँपी, "हो। उसके सिवा मेरे लिए और दूसरी जगह नहीं। दूसरी जगह की अच्छाई से खाविन्द के हाथ की बुराई बढ़कर है।"

"तो उठो। हम तुम्हें मुर्शिदाबाद में महम्मद तक़ी के पास छोड़ आयें। महम्मद तक़ी तुम्हें मुंगेर भेज देंगे। लेकिन हमारी बात मान लो। इस वक़्त लड़ाई छिड़ गई है। नव्वाब अपने नगरनिवासियों को रैदास के गढ़ में भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं। तुम वहाँ न जाओ।"

"मेरे भाग्य में जो भी रहे, मैं जाऊँगी।"

"तुम्हारे भाग्य में मुङ्गेर देखना नहीं।"

दलनी सोचने लगी, कहा, "भाग्य की बात कौन कह सकता है? चलिए, आपके साथ मुर्शिदाबाद जाऊँगी। जब तक दम है, नव्वाब साहब को देखने की आस नहीं छोड़ूँगी।"

आगन्तुक ने कहा, "यह मालूम है; अच्छा, चलो।"

दोनों अँधेरी रात में मुर्शिदाबाद चले। दलनी पतिङ्गे की तरह आग की ओर बढ़ी।

षष्ठ खण्ड

सिद्धि

पहला परिच्छेद

पूर्वकथा

पूर्वकथा जो नही कही, इस समय संक्षेप मे कहूँगा। यह मालूम हो चुका है कि पहले के कहे हुए ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर ही हैं।

जिस दिन अमियट् फ़स्टर के साथ मुङ्गेर से चले, उसी दिन खोज करते करते रमानन्द स्वामी ने मालूम किया कि फस्टर और दलनी बेगम आदि एक साथ अमियट् के साथ गये है। गङ्गा के किनारे चन्द्रशेखर से मुलाक़ात हुई, उन्हें कुल संवाद सुनाया और कहा—"यहाँ अब तुम्हारे रहने की कोई आवश्यकता नही। तुम अपने देश को लौट जाओ। शैवलिनी को हम काशी भेजेंगे। तुमने जो परहितव्रत ग्रहण किया है, आज से उसका काम करो। यह यवन-कन्या धर्मिष्ठा है, इस समय विपत्ति में पड़ी है, तुम इसके पीछे-पीछे जाओ। जब हो सके, इसके उद्धार का उपाय करना। प्रताप भी तुम्हारा आत्मीय है और उपकारी है, तुम्हारे लिए ही उसकी यह दुर्दशा हुई है, उसे इस समय छोड़ना नही चाहिए। इन लोगों के पीछे लगो।" चन्द्रशेखर ने नव्वाब को संवाद देना चाहा, पर रमानन्द स्वामी ने मना किया, कहा, "वहाँ हम संवाद भेजवा देंगे।" गुरु की आज्ञा से, लाचार होकर, चन्द्रशेखर एक छोटी किश्ती लेकर अमियट् के पीछे पीछे चले। रमानन्द स्वामी भी उस समय से शैवलिनी को काशी भेजने के लिए, उपयुक्त शिष्य की खोज करने

लगे। अकस्मात् उन्हें मालूम हुआ, शैवलिनी एक दूसरी नाव लेकर अँगरेज़ों के पीछे लगी है। रमानन्द स्वामी बड़े संकट में पड़े। यह पापिनी किसके अनुसरण में प्रवृत्त हुई? फ़स्टर के या चन्द्रशेखर के? रमानन्द स्वामी ने मन-ही-मन सोचा, "जान पड़ता है, चन्द्रशेखर के लिए फिर हमें सांसारिक व्यापार मे लिप्त होना पड़ा।" यह सोच कर वे भी उसी रास्ते चले।

रमानन्द स्वामी ने सदा पैदल देश-विदेशों का भ्रमण किया है, उत्कृष्ट परिव्राजक है। वे तट की राह से पैदल चलते हुए जल्द शैवलिनी को पीछे छोड़ आये, ख़ास तौर से इसलिए कि वे आहार और निद्रा के वशीभूत नहीं है, अभ्यास से इन पर अपना अधिकार रक्खा था। क्रमशः बढ़ते हुए चन्द्रशेखर को पकड़ा। चन्द्रशेखर ने, किनारे पर रमानन्द स्वामी को देखकर, वहाँ आकर उन्हें प्रणाम किया।

रमानन्द स्वामी ने कहा, "एक दफ़ा नवद्वीप में अध्यापकों से बात-चीत करने के लिए, वङ्ग देश जाने की इच्छा की है; चलो, तुम्हारे साथ चलें।" यह कहकर रमानन्द स्वामी चन्द्रशेखर की नाव पर चढ़े।

अँगरेज़ो की छप्परवाली नावें देखकर उन लोगों ने अपनी छोटी किश्ती एकान्त मे लगाई और किनारे पर चढ़े। देखा, शैवलिनी की नाव भी एकान्त में आकर लगी। देखा, प्रताप और शैवलिनी तैरकर भगे। तब वे लोग भी किश्ती पर चढ़कर उनके पीछे लगे। उन लोगों ने नाव लगाई देखकर इन लोगो ने भी कुछ दूर पर किश्ती भिड़ाई। रमानन्द स्वामी बुद्धि के आकर थे, उन्होने चन्द्रशेखर से पूछा, "तैरते समय प्रताप और शैवलिनी में क्या बातचीत हुई थी, कुछ तुमने सुनी?"

च०—जी, नही।

र०—तो आज रात को सोना नहीं। इन लोगों पर नज़र रखना।

दोनो जगे रहे। देखा, रात समाप्त होते-होते ही शैवलिनी नाव से निकल गई। क्रमशः किनारे के वन में पैठकर अदृश्य हो गई। सूर्य निकल आया, फिर भी नहीं लौटी। तब रमानन्द स्वामी ने चन्द्रशेखर से कहा, "कुछ समझ मे नही आ रहा, इसके मन में क्या है। चलो, इसका पीछा पकड़े।"

तब दोनों ने सतर्क रहकर शैवलिनी का अनुसरण किया। सन्ध्या के बाद मेघाडम्बर देखकर रमानन्द स्वामी ने पूछा, "तुम्हारी बाहो में कितना बल है?"

चन्द्रशेखर ने मुस्किराकर एक बड़ा-सा पत्थर एक हाथ से उठा कर दूर फेंक दिया।

रमानन्द स्वामी ने कहा, "ठीक है। शैवलिनी के पास जाकर छिपकर बैठो। आती हुई आँधी में मदद न पहुँचने पर शैवलिनी की हत्या से स्त्री-हत्या होगी। पास एक गुहा है, हमें उसका रास्ता मालूम है। हम जब कहेंगे तब तुम शैवलिनी को गोद मे लेकर हमारे पीछे पीछे आना।"

चन्द्र०—अभी गहरा अँधेरा होगा। रास्ता कैसे पहचानूँगा?

रमा०—हम पास ही रहेंगे। अपने दण्ड का अगला हिस्सा तुम्हें पकड़ा देंगे। दूसरा हिस्सा हमारे हाथ में रहेगा।

शैवलिनी को गुहा में रखकर चन्द्रशेखर बाहर आये। रमानन्द स्वामी ने मन ही मन सोचा, "मैंने इतने काल तक सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन किया है, सब तरह के आदमियों से परिचय और वार्त्तालाप किया है, लेकिन सब व्यर्थ हुआ—इस बालिका के मन की बात मेरी समझ में नहीं आई। इस समुद्र का क्या तलदेश नहीं?" यह सोचकर चन्द्रशेखर से कहा, "पास एक पार्वत्य मठ है, आज वहीं जाकर विश्राम करो। शैवलिनी के लिए आया कर्तव्य पूरा कर तुम फिर यवनी का अनुसरण करना। समझना, परहित के सिवा तुम्हारा दूसरा व्रत नही। शैवलिनी के लिए चिन्ता न करना

हम यहाँ हैं। तुम मेरी अनुमति के बिना शैवलिनी से मुलाक़ात न करना। तुम अगर मेरे मत से काम करोगे तो शैवलिनी का परम उपकार हो सकेगा।"

इस बातचीत के हो जाने पर चन्द्रशेखर बिदा हुए। रमानन्द स्वामी इसके बाद अँधेरे में दूसरों की दृष्टि बचाकर गुहा के भीतर गये।

इसके बाद जो घटना हुई, वह पाठकों को मालूम है।

उन्माद-ग्रस्त शैवलिनी को चन्द्रशेखर उसी मठ में रमानन्द स्वामी के पास ले गये। रोकर कहा, "गुरुदेव! यह क्या किया?"

रमानन्द स्वामी ने शैवलिनी की अवस्था की अच्छी तरह जाँच करके कुछ हँसकर कहा, "अच्छा ही हुआ है। चिन्ता न करना। तुम यहाँ दो-एक दिन विश्राम करो। बाद को इसे साथ लेकर स्वदेश जाओ। जिस मकान में यह रहती थी, उसी में इसे रखना। जो इसकी सङ्गिनी थी, उन्हें सदा इसके पास रहने का अनुरोध करना। प्रताप से वहाँ कभी कभी जाने के लिए कहना। बाद को हम भी आयेंगे।"

गुरु की आज्ञा के अनुसार चन्द्रशेखर शैवलिनी को घर ले आये।

दूसरा परिच्छेद

हुक्म

अँगरेज़ों से लड़ाई छिड़ गई। मीरक़ासिम का अधःपतन शुरू हुआ। मीरक़ासिम कटोआ की पहली ही लड़ाई में हारे। इसके बाद गुरगन खाँ की दग़ाबाज़ी का पर्दा फ़ाश होने

लगा। नव्वाब को जो भरोसा था, उसकी जड़ जाती रही। इसी वक़्त नव्वाब की बुद्धि भी साथ छोड़ने लगी। बन्दी अँगरेज़ों की जान लेने का इरादा किया। दूसरों के साथ भी बुरा बर्ताव करने लगे। इसी समय महम्मद तक़ी की भेजी दलनी की ख़बर पहुँची। जलती आग में घी की आहुति पड़ी। अँगरेज़ दग़ाबाज़, सेनापति दग़ाबाज़, राजलक्ष्मी विश्वासघातिनी; और दलनी भी दग़ा कर गई ? और न सहा गया। मीरक़ासिम ने महम्मद तक़ी को लिखा, "दलनी को यहाँ भेजने की ज़रूरत नहीं। उसका वही ज़हर देकर ख़ात्मा कर दो।"

महम्मद तक़ी अपने हाथ ज़हर का प्याला लेकर दलनी के पास गया। महम्मद तक़ी को अपने पास देखकर दलनी ताज्जुब में आ गई, कहा, "यह क्या है, खाँ साहब, ऐसी बेअदबी कैसे कर रहे हैं ?"

मत्थे पर हाथ मारकर महम्मद तक़ी ने कहा "क़िस्मत ! नव्वाब साहब आपसे नाख़ुश हैं।"

खिलखिलाकर दलनी ने कहा, "आपसे किसने कहा ?"

महम्मद तक़ी ने कहा, "एतबार न हो तो परवाना मुलाहज़ा कीजिए।"

द०—तो आप परवाना नहीं पढ़ सके।

महम्मद तक़ी ने दलनी को नव्वाब का परवाना पढ़ने के लिए दिया। दलनी ने परवाना पढ़कर हँसकर दूर फेंक दिया। कहा, "यह जाली है। मुझसे ऐसी गुस्ताख़ी क्यों ? जान से हाथ धोना है, इसलिए ?"

म०—आप घबरायें नहीं, मैं आपको बचा सकता हूँ।

द०—अच्छा ! तुम्हें कोई मतलब निकालना है ? तुम जाली परवाना लेकर मुझे डराने आये हो ?

म०—तो सुनिए। मैंने नव्वाब साहब से अर्ज़ किया था कि

आप अमियट् की नाव पर उसकी रखेली की हैसियत से है, इसलिए यह हुक्म आया है ।

दलनी की भौंहों में बल पड़ गये । स्थिरवारिवाली ललाट-गङ्गा में तरङ्ग उठी । भौंहों की कमान में चिन्ता की डोर चढ़ गई । महम्मद तक़ी ने मन में, आफ़त आई, सोचा । दलनी ने पूछा, "क्यों—लिखा था ?" महम्मद तक़ी ने आनुषङ्गिक कुल बातें शुरू से आखिर तक कहीं ।

तब दलनी ने कहा, "देखूँ, परवाना फिर देखूँ ।"

महम्मद तक़ी ने फिर दलनी के हाथ में परवाना दिया । दलनी ने अच्छी तरह देखा, परवाना सच्चा है, जाली नहीं । "कहाँ है ज़हर ?"

"कहाँ है ज़हर" सुनकर महम्मद तक़ी ताज्जुब में आ गया । कहा, "ज़हर क्यों ?"

द०—परवाने मे क्या हुक्म है ?

मह०—आपको ज़हर पिलाने के लिए ।

द०—तो फिर कहाँ है ज़हर ?

मह०—आप क्या ज़हर का प्याला पीजिएगा ?

द०—मुल्क के मालिक नव्वाब साहब का हुक्म है, हम क्यों न बजा लायेंगे ।

महम्मद तक़ी मारे शर्म के मर गया । कहा, "जो कुछ हुआ, हुआ । आपको ज़हर नहीं पीना होगा । मैं इसकी सूरत निकालता हूँ ।"

दलनी की आँखो से क्रोध से चिनगारियाँ निकलने लगी । वह छोटी-सी देह उन्नत कर खड़ी होकर दलनी बोली, "जो तुम्हारे जैसे दोज़ख़ के कीड़े के हाथ जाँबख़्शी ले, वह तुमसे भी गिरा हुआ होगा—प्याला लाओ ।"

महम्मद तक़ी दलनी को देखता रहा। सुन्दरी—नवीना—जवानी की वर्षा से रूप की नदी अभी ही अभी भरी है, भरे वसन्त में अङ्गों के कुल मुकुल खिल गये हैं। वसन्त और वर्षा एक जगह आ मिले हैं। जिसे देख रहे हैं, वह दुःख से दो टूक हुआ जा रहा है, परन्तु मुझे देखकर कितना सुख है। जगदीश्वर! दुःख को इतना सुन्दर तुमने क्यों बनाया है? यह जो कातरा बालिका है—आँधी की झकोरी खिली कली—तरङ्गों से डाँवाडोल प्रमोद की नाव—इसे लेकर क्या करूँगा? कहाँ रक्खूँगा? शैतान ने आकर तक़ी के कान में कहा, "हृदय में।"

तक़ी ने कहा, "सुनो सुन्दरी, मुझे प्यार करो, तुम्हें जहर नहीं पीना होगा।"

सुनकर दलनी ने, लिखते लज्जा लगती है, महम्मद तक़ी को लात मारी।

महम्मद तक़ी का ज़हर देना नहीं हुआ। महम्मद तक़ी अधखुली निगाह से दलनी को देखता हुआ धीरे धीरे चला गया।

तब दलनी ज़मीन पर लोटकर रोने लगी—"ऐ राजों के राजा, ऐ शाहनशाह, ऐ बादशाहों के बादशाह! इस ग़रीब ख़ादिमा के लिए आपने क्या हुक्म फ़र्माया है? ज़हर पिऊँ? आपका हुक्म-तामीली के लिए ज़रूर पिऊँगी। आपका प्यार ही मेरे लिए आबे-हयात है, आपकी नाराज़गी मेरे लिए ज़हर। आप जब कि नाराज़ हैं, मुझे ज़हर मिल चुका। आपकी नाराज़गी से क्या ज़हर में बढ़कर जलन है? ऐ राजों के महाराज, रौशनेजहाँ, ऐ मालिकेमुल्क, ऐ ख़ादिमा के सहारा, ऐ नबी, ऐ रहीम, ऐ करीम, आप कहाँ हैं? मैं आपके हुक्म से हँसती हुई ज़हर पी लूँगी, सिर्फ़ यह तमन्ना रही कि आपने खड़े खड़े अपनी आँखों से नहीं देखा।"

करीमन नाम की एक बाँदी दलनी की परिचर्या के लिए नियुक्त थी। उसे बुलाकर दलनी ने अपने बचे हुए गहने उसे दे दिये,

कहा, छिपाकर हकीम से कोई ऐसी दवा ले आओ, जिससे मुझे ऐसी नींद आये कि फिर आँखें न खुलें। क़ीमत ये ज़ेवर बेचकर चुकाना। जो कुछ बचे वह खुद लेना।"

करीमन दलनी को आँसूभरी आँखे देखकर माजरा समझी। पहले तो वह सम्मत नहीं हुई, लेकिन दलनी बार बार उत्तेजना भरती रही। अन्त मे मूर्ख स्त्री अधिक अर्थ के लोभ में स्वीकृत हो गई।

हकीम ने दवा दी। महम्मद तक़ी के पास हरकारे ने आकर चुपचाप खबर दी—"करीमन बाँदी अभी अभी मिर्ज़ा हबीब के यहाँ से ज़हर खरीद लाई है।"

महम्मद तक़ी ने करीमन को पकड़ा। करीमन ने स्वीकार किया। कहा, "दलनी बेगम को ज़हर दिया है।"

सुनकर महम्मद तक़ी दलनी के पास आया। देखा, दलनी की आँखें उलट गई है, निगाह उठी हुई है, हाथ जोड़े हुए बैठी है—बड़ी बड़ी रतनार आँखों मे आँसुओं की धारा पर धारा वह रही है और कपोलों से वस्त्र पर आकर गिर रही है—सामने खाली प्याला पड़ा हुआ है। दलनी ज़हर पी चुकी है।

महम्मद तक़ी ने पूछा, "यह किस चीज़ का प्याला पड़ा हुआ है?"

दलनी ने कहा, "ज़हर का। मैं तुम्हारी तरह नमकहराम नहीं, मैं मालिक का हुक्म माना करता हूँ। तुम्हारा फ़र्ज़ है, बाक़ी ज़हर पीकर तुम भी मेरे साथ आओ।"

महम्मद तक़ी चुपचाप खड़ा रहा। दलनी धीरे धीरे लेट गई। आँखें मूँद लीं। सब कुछ अँधेरा हो गया। दलनी चली गई।

तीसरा परिच्छेद

सम्राट् और वराट्

मीरक़ासिम की सेना कटोआ के रणक्षेत्र में परास्त होकर हट आई थी। फूटी क़िस्मत गिरिया के मैदान में फिर फूटी—फिर यवन-सेना अँगरेज़ों के बाहुबल से, वायु से धूलिराशि की तरह ताड़ित होकर छिन्न-भिन्न हो गई। मरने से बची हुई सेना ने उदयनाले मे शरण ली। वहाँ चारों ओर खाई काट कर यवन-सेना अँगरेज़-सेना का धावा रोकने को जमी।

मीर क़ासिम वहाँ हाज़िर थे। सैयद अमीर हुसेन ने गुज़ारिश की कि क़ैदी उनसे मिलकर अर्ज़ करने के लिए बेचैन हैं। उसकी कुछ खास बातें हैं, हुज़ूर के सामने ही अर्ज़ करने लायक़ हैं।

मीर क़ासिम ने पूछा, "वह कौन है ?"

अमीर हुसेन ने कहा, "वह एक औरत है। कलकत्ते से आई है। वारेन् हेस्टिङ्ग्स् साहब ने उसे भेज दिया है। वह सही सही क़ैदी नहीं। जङ्ग छिड़ने के पहले का खत उसके पास था, इसलिए लिया। क़ुसूर हुआ हो, ग़ुलाम सामने है।" यह कहकर अमीर हुसेन ने खत पढ़कर नव्वाब को सुनाया।

वारेन हेस्टिङ्ग्स् ने लिखा था, "यह औरत कौन है, मैं नहीं पहचानता। वह बहुत बेबस होकर, दबी हुई, मुझसे अर्ज़ करने लगी कि कलकत्ते में वह बिना मददगार के है, अगर मैं उसे नव्वाब साहब के यहाँ भेज दूँ तो उसका बड़ा उपकार हो। आपसे हमारी लड़ाई चलनेवाली है, परन्तु हमारी जाति स्त्रियों से बैर नहीं मानती, इसलिए इसे आपके पास भेजा। भला-बुरा कुछ नहीं मालूम।"

खत सुनकर नव्वाब ने उस स्त्री को हाज़िर करने की आज्ञा दी। सैयद अमीर हुसेन बाहर निकलकर उस औरत को ले आये। नव्वाब ने देखा, कुलसूम है।

रुष्ट होकर नव्वाव ने कहा, "क्यों बाँदी, जान देना चाहती है।"

नव्वाब पर नज़र गड़ाये हुए कुलसूम ने कहा, "नव्वाब साहब, आपकी बेगम कहाँ है, दलनी बीबी कहाँ हैं?" कुलसूम के तौर से अमीरहुसेन घबराया और नव्वाब को सलाम करता हुआ हट गया।

मीरक़ासिम ने कहा, "जिस जहन्नुम वह गई है, उसी में जल्द तू भी जायगी।"

कुलसूम ने कहा, मैं भी जाऊँगी, आप भी जाइएगा। रास्ते पर सुना, लोग कह रहे हैं, दलनी बीबी ने ख़ुदकुशी कर ली है। क्या यह सच है?"

नव्वाब—ख़ुदकुशी? सरकारी हुक्म से उसकी जान ली गई है। उसे फेलों के लिए मदद तुझसे मिलती थी—तू कुत्तों से नुचवाई जायगी।

कुलसूम पछाड़ खाकर चीख उठी और जो कुछ मुँह में आया, कह कहकर नव्वाब को गालियाँ देना शुरू किया। सुनकर चारों तरफ़ से सैनिक, उमरा, नौकर, रखवाले आ गये—एक कुलसूम के बाल पकड़कर खींचने दौड़ा। नव्वाब ने मना किया। वे तअज्जुब में आ गये और हट गये। तब कुलसूम कहने लगी, "आप लोग आ गये हैं, अच्छा हुआ है। मैं एक न-सुनी कहानी कहूँगी, सुनिए। अभी मेरी गरदन जायगी। मेरे न रहने पर, फिर कोई सुन नहीं पायेगा; सुन लीजिए।"

"सुनिए, सूबे बङ्गाल और बिहार का मीरक़ासिम एक नासमझ नव्वाब है। दलनी नाम को उसकी एक बेगम थी। वह नव्वाब के सिपह-सालार गुरगन ख़ाँ की बहन थी।"

सुनकर लोग ख़ामोश हो गये—एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सबका कौतूहल बढ़ने लगा। नव्वाब भी कुछ नहीं बोले। कुलसूम कहने लगी, "गुरगन ख़ाँ और दौलतउन्निसा इस्फ़हान से सलाह करके रोटियों की तलाश में बङ्गाल आये। दलनी जब मीरक़ासिम के महल

में बाँदी बनकर पैठी, तब दोनों ने एक दूसरे की तरक्क़ी के लिए क़सम खाई।"

कुलसूम ने, इसके बाद, जिस रात दोनों गुरगन खाँ के भवन में गई थीं, उसका कुल क़िस्सा शुरू से आख़िर तक बयान किया। गुरगन खाँ से जो बातें हुई थीं, वह दलनी से सुन चुकी थी, वे बातें भी कहीं। इसके बाद वहाँ से लौटना और क़िले के भीतर पैठने की मुमानियत होना, ब्रह्मचारी की मदद, प्रताप के घर रहना, अँगरेज़ों की चढ़ाई और शैवलिनी की जगह दलनी का ले जाना, नाव की क़ैद, अमियट् आदि का काम आना, फ़स्टर के साथ उन लोगों का भगना, अन्त में दलनी को गङ्गा के किनारे फ़स्टर का उतार देना, यह सब कहकर कहने लगी, "मेरे सर उस वक़्त शैतान चढ़ा था, शक नहीं, नही तो मैंने उस वक़्त बेगम को क्यों छोड़ा? उस पापी फिरङ्गी की मुसीबतें देखकर मैंने सोचा था, लेकिन वह बात रहे। सोचा था, सरकारी नाव पीछे आ रही है, बेगम को चढ़ा लेगी, नही तो मैं उन्हें छोड़ती क्यों? लेकिन उसके बराबर की सज़ा मुझे मिल चुकी है, बेगम को छोड़ने के बाद ही मैंने फ़स्टर से उतार देने की कितनी मिन्नतें कीं कि मुझे उतार दीजिए, लेकिन उसने एक नहीं सुनी। कलकत्ते में जो भी मिला है, उसी से आरज़ू की है कि मुझे भेज दीजिए, किसी ने नहीं सुनी। सुना था, हेस्टिंग्स् साहब बड़े रहमदिल हैं, उनसे रोई—उनके पैरों पड़ी, उन्हीं की मेहरबानी से पहुँची हूँ। अब आप लोग मेरी जान ले सकते हैं, मुझे अब बचने की आस नहीं।"

यह कहकर कुलसूम रोने लगी।

क़ीमती सिंहासन पर रत्नों की फूटती सैकड़ों किरनों पर बैठे बङ्गाल के नव्वाब, सर झुकाये हुए थे। इस बड़ी सल्तनत के सँभालने की बागडोर उनके हाथ से खुली पड़ रही थी, बड़ी कोशिश से भी नहीं सँभली। परन्तु जो अजेय राज्य बिना यत्न के रहता, वह कहाँ गया।

उन्होंने गुल छोड़कर खार पाला है—कुलसूम ने सच कहा है—बङ्गाल का नव्वाब नासमझ है।

नव्वाब ने मुखातिब लोगों से कहा, "तुम लोग सुनो, यह सल्तनत अब रहने की नहीं। इस बाँदी ने जो कुछ कहा ह, वह सच है—बङ्गाल का नव्वाब नासमझ है। तुम लोगों से हो, सूबा बचाओ। मैं चला। रैदास के गढ़ में मै छिपा रहूँगा, या फ़क़ीरी ले लूँगा।"—नव्वाब का बली शरीर, प्रवाह में गाड़े बाँस के डण्डे की तरह, काँप रहा था। आँखों के आँसू रोक कर मीरक़ासिम कहने लगे, "सुनो दोस्तो, अगर अँगरेज़ या उनके नौकर सिराजउद्दौला की तरह मुझे मार डालें तो तुमसे मेरी आरज़ू है कि दलनी की क़ब्र की बग़ल में मेरी क़ब्र बनवाना। अब मुझसे बातचीत नहीं की जाती, अब तुम लोग चलो। लेकिन मेरा एक हुक्म मानो, मैं उस तकी ख़ाँ से एक दफ़ा समझना चाहता हूँ—अली इब्राहीम ख़ाँ!

अली इब्राहीम ख़ाँ आदाब बजा लाये। नव्वाब ने कहा, "तुम जैसा दोस्त दूसरा नही, तुमसे मेरी एक माँग है, महम्मद तक़ी ख़ाँ को मेरे पास ले आओ।"

इब्राहीम खाँ आदाब बजाकर तम्बू के बाहर गये और घोड़े पर सवार हुए।

उसी वक़्त नव्वाब ने पूछा, "कोई और साथ देगा?"

सबने हाथ बाँधकर आँख देखी। नव्वाब ने कहा, कोई फ़स्टर को ला सकते हो?"

अमीरहुसेन ने कहा, "कौन कहाँ है, मैं इसकी तलाश करने कलकत्ता चला।"

सोचकर नव्वाब ने कहा, "और उस शैवलिनी को? उसे कोई ला सकोगे?"

महम्मद इरफ़ान ने हाथ बाँधकर अर्ज़ की, "अब तक वह ज़रूर अपने घर पहुँची होगी, मैं उसे लाता हूँ।"

यह कहकर महम्मद इरफ़ान सलाम करता हुआ बढ़ा।

नव्वाब ने कहा, "जिस ब्रह्मचारी ने बेगम को ठहरने की जगह दी थी, उनकी खोज कोई कर सकते हो ?"

महम्मद इरफ़ान ने कहा, हुक्म हो तो शैवलिनी की खोज के बाद बरमचारी का पता लगाने मुङ्गेर जाऊँ।"

क़ासिम अली ने कहा, "गुरगन खाँ कितनी दूर पहुँचे ?"

साथ के हुक्काम ने कहा, "वह फ़ौज लेकर उदयनाला आ रहे हैं, सुना था; लेकिन अभी तक पहुँचे नहीं।"

नव्वाब धीमे स्वरों में कहने लगे, "फ़ौज, फ़ौज, किसकी फ़ौज !"

किसी ने जैसे धीमी आवाज़ में कहा, "उन्हीं की।"

हुक्काम बिदा हुए। नव्वाब रत्न-सिंहासन छोड़कर उठे। हीरों-जड़ा ताज दूर फेंक दिया, मोतियों की माला गले से तोड़ डाली, रत्नोंजड़ा परिच्छद उतार फेंका। फिर ज़मीन पर लोटकर "दलनी, दलनी" कहकर ऊँचे स्वर से रोने लगे। इस संसार की ऐसी नव्वाबी है।

चौथा परिच्छेद

जान स्टैलकार्ट

पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है कि कुलसूम के साथ वारेन् हेस्टिंग्स् साहब की मुलाक़ात हुई थी, कुलसूम ने अपनी बात विस्तार से कहते हुए फ़स्टर के कुल कामों का विशेष रूप से उल्लेख किया था।

इतिहास में वारेन हेस्टिंग्स् परपीड़क के रूप से परिचित हुए हैं। कर्मठ व्यक्ति कर्तव्य के तक़ाज़े से बहुत समय परपीड़क हो उठते

है। जिन पर राज्य की रक्षा का भार रहता है, वे स्वयं दयालु और न्यायी होने पर भी राज्य की रक्षा के लिए परपीड़न करने को बाध्य होते हैं। जहाँ दो-एक आदमियों पर अत्याचार करने पर समस्त राज्य का उपकार होता है, वहाँ वे समझते हैं कि वह अत्याचार कर्तव्य है। वस्तुतः जो लोग वारेन हेस्टिंग्स् की तरह साम्राज्य की स्थापना कर सकते हैं, वे दयालु और न्यायनिष्ठ नहीं, यह कभी सम्भव नहीं हो सकता। जिनकी प्रकृति में दया और न्यायपरता नहीं, उनके द्वारा राज्य की स्थापना जैसे महान् कार्य नहीं हो सकते, क्योंकि उनकी प्रकृति उन्नत नहीं—क्षुद्र है। ये सब क्षुद्रचेता के काम नहीं।

वारेन हेस्टिंग्स् दयालु और न्यायनिष्ठ थे। तब वे गवर्नर नहीं हुए। कुलसूम को बिदा कर वे फ़स्टर के अनुसन्धान में लगे। डर कर फ़स्टर ने उनसे अपराध स्वीकार किया। वारेन् हेस्टिंग्स् ने कौन्सिल में प्रस्ताव उठाकर फ़स्टर को बरख़ास्त किया। हेस्टिंग्स् की इच्छा थी कि फ़स्टर को अदालत में बुलवायें, लेकिन किसी गवाह का पता न था और फ़स्टर भी अपने कर्म का बहुत काफ़ी फल भोग चुका था, यह सोचकर उससे विरत हुए।

फ़स्टर यह नहीं समझा। वह बहुत ही छोटी तबीअत का आदमी था। उसने सोचा, उसे हलके क़ुसूर पर सख़्त सज़ा दी गई है। छोटी तबीअत के अपराधी नौकरों के स्वभाव के अनुसार वह अपने पहले के मालिकों से बहुत नाराज़ हो गया। उनसे बदला लेने के लिए कमर बाँधी।

डाइस सम्बर नाम का एक सुइस था जर्मन मीरक़ासिम की सेना में सैनिक-कार्य में नियुक्त था। यह आदमी समरू नाम से प्रसिद्ध था। उदयनाला में, यवन-शिविर में समरू सेना लेकर उपस्थित था। फ़स्टर उदयनाला में उसके पास आया।

पहले तरकीब सोचकर समरू के पास दूत भेजा। समरू ने सोचा, इससे अँगरेज़ों की गुप्त मन्त्रणायें मालूम कर सकूँगा। समरू ने फ़स्टर को बुला लिया। फ़स्टर अपना नाम छिपाकर जान स्टैलकार्ट कहकर अपना परिचय देकर समरू के शिविर में पैठा। जब अमीर-हुसैन फ़स्टर की तलाश में थे तब लारेंस फ़स्टर समरू के तम्बू में थे।

अमीर हुसैन कुलसूम को ख़ास जगह रखकर फ़स्टर की खोज में निकले। अनुचरों से सुना कि एक आश्चर्यजनक घटना घटी है, एक अँगरेज़ आकर मुसलमान-सेना में मिला है। वह समरू के शिविर में है। अमीर हुसैन समरू के शिविर में गये।

जब अमीर हुसैन समरू के तम्बू में पैठे, तब समरू और फ़स्टर एक जगह बातचीत कर रहे थे। अमीर हुसैन बैठ गये, तब समरू ने जान् स्टैलकार्ट कहकर उनसे फ़स्टर का परिचय दिया। अमीर हुसैन स्टैलकार्ट से बातचीत करने लगे।

दूसरी बातचीत के बाद अमीर हुसैन ने स्टैलकार्ट से पूछा, "लारेन्स फ़स्टर नाम के अँगरेज़ को आप पहचानते है ?"

फ़स्टर का मुँह लाल हो गया। वह ज़मीन पर नज़र गड़ाये हुए कुछ विकृत स्वर से बोला, "लारेन्स् फ़स्टर ? नही तो।"

अमीर हुसैन ने फिर पूछा, "कभी उसका नाम सुना है ?"

फ़स्टर ने कुछ देर में जवाब दिया, "नाम—लारेन्स् फ़स्टर—हाँ—न, नही तो।"

अमीर हुसैन ने और कुछ नही कहा, दूसरी बातचीत करने लगे। परन्तु देखा, स्टैलकार्ट अब अच्छी तरह बातचीत नहीं कर रहे हैं। दो-एक बार, उठ जाने का उपक्रम किया। अमीर हुसैन ने अनुरोध करके उन्हें बैठाला। अमीर हुसैन के मन में आ रहा था कि यह फस्टर की बात जानता है, लेकिन बतला नहीं रहा।

फस्टर कुछ देर बाद अपनी टोपी सर पर रखकर बैठा। अमीर हुसैन को मालूम था कि अँगरेज़ों के क़ायदे के ख़िलाफ़ है। और भी,

जब फ़स्टर टोपी सिर पर रख रहे थे, तब उनके सिर के केशशून्य घावों के निशानों पर अमीर हुसैन की निगाह गई। क्या स्टैलकार्ट ने सर के निशान ढँकने के लिए टोपी लगाई ?

अमीर हुसैन बिदा हुए। अपने शिविर में आकर कुलसूम को बुलाया। उससे कहा, "मेरे साथ आ।" कुलसूम उनके साथ गई।

कुलसूम को साथ लेकर अमीर हुसैन फिर समरू के तम्बू में गये। कुलसूम बाहर रही। फ़स्टर तब भी समरू के तम्बू में बैठा था। अमीर हुसैन ने समरू से कहा, "अगर आपका हुक्म हो तो मेरी एक बाँदी आपको आकर सलाम करे। खास काम है।"

समरू ने आज्ञा दी। फ़स्टर का हृदय काँपा। वह उठकर खड़ा हो गया। अमीर हुसैन ने हँसकर हाथ पकड़ कर उसे बैठा लिया। कुलसूम को बुलाया। कुलसूम आई। फ़स्टर को देखकर निस्पन्द हो खड़ी रही।

अमीर हुसैन ने कुलसूम से पूछा, "कौन है ?"

कुलसूम ने कहा, "लारेन्स फ़स्टर !"

अमीर हुसैन ने फ़स्टर का हाथ पकड़ा। फ़स्टर ने कहा, "मैंने क्या किया है ?"

अमीर हुसैन ने उसकी बात का जवाब न देकर समरू से कहा, "साहब, इनकी गिरफ़्तारी के लिए नव्वाब नाज़िम का हुक्म है। आप मेरे साथ सिपाही दीजिए, इन्हें ले चले।"

समरू ताज्जुब में आ गये। पूछा, मामला क्या है ?

अमीर हुसैन ने कहा, "बाद को कहूँगा।" समरू ने साथ पहरे-वाला दिया। अमीर हुसैन फ़स्टर को बाँधकर ले गये।

पाँचवाँ परिच्छेद

फिर वेदग्राम में

बड़े कष्ट से चन्द्रशेखर शैवलिनी को वेदग्राम में ले आये थे।

दीर्घ काल बाद फिर घर में गये। देखा, वह घर तब जङ्गल से भी भयङ्कर हो गया है। छप्पर में प्रायः तिन नहीं, आँधी में उड़ गया है; कहीं छप्पर गिर गया है, ढोर कुल तिन खा गये हैं। बाँस का ठाठ तोड़कर पड़ोस के लोग ईंधन के लिए ले गये हैं। आँगन में घना जङ्गल उग आया है। साँप-गोजर निर्भय होकर उसमें विचर रहे हैं। कमरों के कुल दरवाज़े चोर खोल ले गये हैं। मकान खुला हुआ है, उसमें द्रव्य-सामग्री कुछ नहीं रह गई। कुछ चोर ले गये हैं, कुछ सुन्दरी ने अपने घर ले जाकर रक्खा है। मकान में बरसात का पानी जम गया है। कहीं सड़ा है, कहीं गोल गोल दरारें ली है। चूहे, तिलचट्टे और---दलों में घूम रहे हैं। चन्द्रशेखर शैवलिनी का हाथ पकड़कर लम्बी साँस छोड़कर उस घर के भीतर गये।

देखते रहे, जिस जगह खड़े होकर पुस्तक-राशि जलाई थी। चन्द्रशेखर ने पुकारा, "शैवलिनी!"

शैवलिनी बोली नहीं। कमरे के द्वार पर बैठी पहले स्वप्न-से दिखे कनेर के पेड़ को देखती रही। चन्द्रशेखर ने जितनी बातें पूछीं, किसी का भी उत्तर नहीं दिया---विस्फारित लोचनों से चारों ओर देख रही थी, ज़रा-ज़रा मुस्करा रही थी; एक दफ़ा खिलखिलाकर उँगली उठाकर कुछ दिखाया।

इधर गाँव में बात फैल गई—चन्द्रशेखर शैवलिनी को लेकर आये हैं। बहुत लोग देखने के लिए चले। सुन्दरी सबसे पहले आई।

सुन्दरी ने शैवलिनी के पागल होने की कोई बात नहीं सुनी थी। पहले आकर चन्द्रशेखर का प्रणाम किया। देखा, चन्द्रशेखर का ब्रह्मचारी का वेश है। शैवलिनी की तरफ़ देखकर बोली, "इसे ले आये हो, अच्छा किया है, प्रायश्चित्त करने से हो जायगा।" परन्तु सुन्दरी देखकर विस्मित हुई कि चन्द्रशेखर है, फिर भी शैवलिनी हटी नहीं, घूँघट भी नहीं काढ़ा, बल्कि सुन्दरी की तरफ़ देखकर खिलखिलाकर हँसने लगी। सुन्दरी ने सोचा, "शायद यह अँगरेज़ी क़ायदा है। शैवलिनी अँगरेज के साथ रहकर सीख आई है।" यह सोचकर शैवलिनी के पास जाकर बैठी,—कुछ दूर रही, धोती से धोती छू न जाय। हँसकर शैवलिनी से पूछा, "क्यों री, पहचान सकती है ?"

शैवलिनी ने कहा, "सकती हूँ, तू पार्वती है।"

सुन्दरी ने कहा, "मर तू, तीन दिन में भूल गई ?"

शैवलिनी ने कहा, "भूलूँगी क्यों री ? वही तो—तूने मेरा भात छू लिया था, इसलिए मैंने मारकर तुझे गूँड़ी कर दिया था। पार्वती दीदी, एक गाना तो गा !

"मेरे मर्म की बात वही री सखी,
मेरे श्याम के बायें हैं राधा कहाँ ?
कह, अँग में बादल के वह चाँद,
रही वह प्रीति अगाधा कहाँ ?"

"कुछ समझ में नहीं आता, पार्वती दीदी, न जाने कौन नहीं है; कोई जैसे था, वह नहीं है; कोई जैसे आयेगा, वह जैसे नहीं आता; कहाँ न जाने आई हूँ, वहाँ जैसे नहीं आई; किसे जैसे खोजती हूँ, उसे जैसे नहीं पहचानती।"

सुन्दरी तअज्जुब में आई। चन्द्रशेखर के मुँह की तरफ़ देखा। चन्द्रशेखर ने सुन्दरी को पास बुलाया। सुन्दरी के पास जाने पर कहा, "पागल हो गई है।"

सुन्दरी तब समझी । कुछ देर तक चुप हो रही। सुन्दरी की आँखें पहले चमकीं, इसके बाद पलकें भीग गईं, अन्त में आँसू गिरने लगे—सुन्दरी रोने लगी। स्त्री-जाति ही संसार की रत्न है। इसी सुन्दरी ने एक दूसरे दिन कायमनोवाक्य से प्रार्थना की थी, शैवलिनी जैसे नाव के साथ डूबकर मरे। आज सुन्दरी की तरह शैवलिनी के लिए कोई व्याकुल नहीं।

सुन्दरी आकर धीरे धीरे आँसू पोंछती हुई, शैवलिनी के पास बैठी—धीरे धीरे बातचीत करने लगी—शैवलिनी कुछ याद नहीं कर सकी। शैवलिनी की स्मृति लुप्त नहीं हुई, हुई होती तो पार्वती नाम न याद आता। परन्तु सही बात नही याद आती, विकृत होकर, उलटे से उलटा जुड़कर याद आता है। सुन्दरी उसके मन में थी, परन्तु सुन्दरी को पहचान नही सकी।

सुन्दरी ने पहले चन्द्रशेखर को अपने मकान पर स्नान-भोजन के लिए भेजा, बाद को वह टूटा घर शैवलिनी के रहने के योग्य बनाने लगी। क्रमशः पड़ोसिनें एक एक कर उसकी मदद में लगीं; आवश्यक कुल सामग्री आने लगी।

इधर प्रताप मुंगेर से लौटकर, लठैतों को ठीक जगह रखकर, एक दफ़ा घर आये। घर आकर सुना, चन्द्रशेखर घर आये हैं। उन्हें देखने के लिए जल्द वेदग्राम में आये।

उसी दिन रमानन्द स्वामी ने भी वहाँ पहले आकर दर्शन दिये। आनन्द के साथ सुन्दरी ने सुना कि रमानन्द स्वामी के उपदेश के अनुसार चन्द्रशेखर दवा करेंगे। दवा करने की शुभ घड़ी निश्चित हुई।

छठा परिच्छेद

योगबल

दवा क्या है, यह मैं नहीं कह सकता, लेकिन इसका सेवन कराने के लिए चन्द्रशेखर विशेष रूप से आत्मशुद्धि कर आये थे। वे सहज ही जितेन्द्रिय हैं, भूख-प्यास आदि शरीर की वृत्तियों पर दूसरों की अपेक्षा उनका अधिक वश है, परन्तु इस समय कठोर अनशन-व्रत का आचरण करते आ रहे थे। मन को कुछ दिनों से ईश्वर के ध्यान में लगा रक्खा था—पारमार्थिक चिन्ता के सिवा दूसरी चिन्ता मन में स्थान नहीं प्राप्त कर सकी।

निश्चित समय में चन्द्रशेखर औषध-प्रयोग के लिए उद्योग करने लगे। शैवलिनी के लिए सेज बिछाने को कहा; सुन्दरी की लगाई परिचारिका ने सेज बिछा दी।

चन्द्रशेखर ने तब उस सेज पर शैवलिनी को लिटाने की आज्ञा दी। सुन्दरी ने शैवलिनी को पकड़कर बलपूर्वक लिटाया—शैवलिनी सहज ही बात नहीं सुनती। सुन्दरी घर जाकर नहायेगी—रोज़ नहाती है।

चन्द्रशेखर ने तब सबसे कहा, "तुम लोग एक दफ़ा बाहर जाओ। मेरे बुलाते ही आना।"

सब लोग बाहर गये, चन्द्रशेखर ने हाथ में लिये दवा का पात्र ज़मीन में रक्खा, शैवलिनी से कहा, "उठकर बैठो तो।"

शैवलिनी मधुर मधुर गीत गाने लगी—उठी नहीं। चन्द्रशेखर स्थिर दृष्टि से उसकी आँखों में आँखें रखकर, धीरे धीरे, थोड़ी-थोड़ी-सी दवा पात्र से लेकर पिलाने लगे। रमानन्द स्वामी ने कहा था, "दवा और कुछ नहीं, सिर्फ़ कमण्डलु का पानी है।" चन्द्रशेखर ने पूछा था, "इससे क्या होगा?" स्वामी जी ने कहा था, "लड़की इससे योगबल प्राप्त करेगी।"

फिर चन्द्रशेखर उसके ललाट, नेत्र आदि के पास तरह तरह की वक्रगति से हाथ फेरने और झाड़ने लगे। इस तरह कुछ देर करते करते शैवलिनी की आँखें मुँद आईं, जल्द शैवलिनी सो गई और गहरी नीद में आ गई।

तब चन्द्रशेखर ने पुकारा, "शैवलिनी!"

शैवलिनी सोती हुई बोली, "जी!"

चन्द्रशेखर ने पूछा, "मैं कौन हूँ?"

शैवलिनी पहले की तरह सोती हुई बोली, "मेरे पति।"

च०—तुम कौन हो?

शै०—शैवलिनी।

च०—यह कौन जगह है?

शै०—वेदग्राम—आपका मकान।

च०—बाहर कौन कौन हैं?

शै०—प्रताप और सुन्दरी और अन्यान्य व्यक्ति।

च०—तुम यहाँ से क्यों गई थीं?

श०—फ्रस्टर साहब ले गया था, इसलिए।

च०—ये बातें इतने दिनों तक तुम्हें याद क्यो नही आईं?

शै०—याद थीं, ठीक ठीक कह नहीं सकती थी।

च०—क्यो?

शै०—मैं पागल हो गई हूँ।

च०—ये बातें सही हैं या कपटता है?

शै०—सही है, कपटता नहीं।

च०—तो अब?

शै०—अब ये बातें स्वप्न हैं—आपकी कृपा से ज्ञान हुआ है।

च०—तो सच बात कहोगी?

शै०—कहूँगी।

च०—तुम फ़्रस्टर के साथ क्यों गईं?

शै०—प्रताप के लिए।

चन्द्रशेखर चौंक उठे—हजार आँखों से विगत घटनायें फिर देखने लगे। पूछा, प्रताप क्या तुम्हारा उपपति है ?

शै०—छिः ! छिः !

च०—तो क्या ?

शै०—एक वृन्त के हम दो फूल हैं, एक वन में खिले थे, तोड़ कर जुदा क्यों कर दिया था ?

चन्द्रशेखर ने बहुत लम्बी साँस छोड़ी। उनकी असीम बुद्धि में कुछ छिपा नहीं रहा। पूछा, "जिस दिन प्रताप म्लेच्छ की नाव से भगा था, उस दिन का तैरना याद है ?

शै०—है।

च०—कौन कौन-सी बातें हुई थीं ?

शैवलिनी ने संक्षेप में शुरू से आखिर तक कहा। सुनकर चन्द्रशेखर ने मन ही मन प्रताप को अनेक साधुवाद दिये। पूछा, "तब तुम फ़स्टर के साथ क्यों रही !"

शै०—सिर्फ़ रही। अगर पुरन्दरपुर जाने पर प्रताप को पाऊँ; इस भरोसे पर।

च०—रहीं सिर्फ़। तो क्या तुम सती हो ?

शै०—प्रताप को मन-ही-मन आत्म-समर्पण किया था, इसलिए मैं सती नहीं—महा पापिष्ठा हूँ।

च०—नहीं तो ?

शै०—नहीं तो सम्पूर्ण सती हूँ।

च०—फ़स्टर के सम्बन्ध में ?

शै०—कायमनोवाणी से।

तेज़ से तेज़ निगाह करके हाथ चलाते हुए चन्द्रशेखर ने पूछा, "सच सच कहो !"

चन्द्रशेखर ने फिर साँस छोड़ी, कहा, "तो ब्राह्मण की लड़की होकर जातिभ्रष्टा होने क्यों गई ?

शै०—आप सर्वशास्त्रों के जानकार हैं, बतलाइए, मैं जातिभ्रष्टा हूँ या नहीं। मैंने उसका अन्न नहीं खाया, उसका छुआ पानी नहीं पिया । रोज़ अपने हाथ पकाकर खाया है । हिन्दू दासी ने पकवा दिया है । एक ही नाव पर रही हूँ ज़रूर, लेकिन गङ्गा पर ।

चन्द्रशेखर अभिवादन होकर बैठे । बहुत सोचा; कहने लगे, "हाय, हाय ! क्या कुकर्म किया है मैंने ! स्त्री-हत्या करने चला था !" कुछ देर बाद पूछा, "ये बातें किसी से तुमने कहीं क्यों नहीं ?"

शै०—मेरी बात पर कौन विश्वास करेगा ?

च०—ये बातें कौन जानता है ?

शै०—फ़स्टर और पार्वती ।

च०—पार्वती कहाँ है ।

शै०—महीने के करीब हुआ, मुङ्गेर में मर गई है ।

च०—फ़स्टर कहाँ है ?

शै०—उदयनाला में, नवाब के शिविर में ।

कुछ देर सोचकर चन्द्रशेखर ने फिर पूछा, "तुम्हारे रोग का क्या प्रतिकार होगा, समझ सकती हो ?"

शै०—आपने अपना योगबल मुझे दिया है, उसके प्रसाद से समझ रही हूँ, आपके चरणों की कृपा से, आपकी दवा से आरोग्य-प्राप्ति करूँगी ।

च०—आरोग्य-प्राप्ति होने पर कहाँ जाने की इच्छा है ?

शै०—अगर विष मिले तो खाऊँ—लेकिन नरक का डर लगता है ।

च०—मरना क्यों चाहती हो ?

शै०—इस संसार में मेरी जगह कहाँ है ?

च०—क्यों मेरे घर में ?

शै०—आप फिर ग्रहण करेंगे ?

च०—अगर करूँ ?

शै०—तो कायमनोवाक्य से आपकी सेवा करूँ; लेकिन आप कलङ्की होंगे ।

इसी समय दूर घोड़े की टाप की आवाज़ सुनाई दी । चन्द्रशेखर ने पूछा, "मेरे योगबल नहीं, तुम्हें रमानन्द स्वामी का योगबल मिला है, कहो, यह कैसी आवाज है ?"

शै०—घोड़े की टाप की आवाज है ।

च०—कौन आ रहा है ?

शै०—महम्मद इरफ़ान—नव्वाब का सैनिक ।

च०—क्यों आ रहा है ?

शै०—मुझे ले जाने के लिए—नव्वाब ने मुझे देखना चाहा है ।

च०—फ़स्टर के वहाँ जाने पर तुम्हें देखना चाहा है; या इससे पहले ?

शै०—नहीं, दोनों को ले जाने को एक साथ हुक्म दिया था ।

च०—कोई चिन्ता नहीं, सोओ ।

यह कहकर चन्द्रशेखर ने सबको बुलाया । उनके आने पर कहा, "यह सो रही है, नींद टूटने पर पात्र की यह दवा पिलाना । फ़िलहाल नव्वाब का सैनिक आ रहा है, कल शैवलिनी को ले जायगा । तुम लोग साथ जाना ।"

सब लोग आश्चर्य में आये और डरे । चन्द्रशेखर से पूछा, "इसे नव्वाब के पास क्यों ले जायँगे ?"

चन्द्रशेखर ने कहा, "अभी सुनोगे, चिन्ता न करो ।"

महम्मद इरफ़ान के आने पर प्रताप उसकी अभ्यर्थना में लगे । चन्द्रशेखर ने आदि से अन्त तक कुल बातें रमानन्द स्वामी से एकान्त में निवेदित कीं । रमानन्द स्वामी ने कहा, "कल हम दोनों आदमियों को नव्वाब के दरबार में हाज़िर रहना होगा ।

सातवाँ परिच्छेद

दरबार में

बड़े से तम्बू में दरबार लगाकर बङ्गाल के नव्वाब बैठे हैं--अन्तिम नव्वाब, मीरक़ासिम के बाद बङ्गाल मे जो नव्वाब हुए, उनमें से किसी ने राज्य नहीं किया।

दरबार लगाकर मोती, पुखराज, सोने और चाँदी से शोभित ऊँचे आसन पर नव्वाब क़ासिम अली खाँ मोती और हीरों से मण्डित होकर, सिर के ताज पर उज्ज्वल सूर्यप्रभ हीरा लगाये, दरबार मे बैठे हैं। बग़ल मे क़तार बाँधे हुए नौकर हाथ जोड़कर खड़े हैं, कर्मचारी हुक्म मिलने पर घुटने टेककर चुपचाप बैठे हैं। नव्वाब ने पूछा, "क़ैदी हाज़िर हैं ?"

महम्मद इरफ़ान ने कहा, "सब हाज़िर हैं।"

नव्वाब ने पहले लारेन्स् फ़स्टर को लाने के लिए कहा।

लारेन्स् फ़स्टर लाया गया, सामने आकर खड़ा हुआ। नव्वाब ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

लारेन्स फ़स्टर समझा था कि अब के निस्तार नही होगा। इतने समय के बाद सोचा, "अब तक अँगरेज़ नाम पर स्याही लगाई है, अब अँगरेज़ की तरह मरूँगा।"

"मेरा नाम लारेन्स् फ़स्टर है।"

नव्वाब--तुम्हारी क़ौम ?

फ़स्टर--अँगरेज़।

नव्वाब--अँगरेज़ मेरे शत्रु हैं। तुम शत्रु होकर क्यों मेरे शिविर में आये थे ?

फ़०--आया था, इसलिए आपकी जो इच्छा हो, कीजिए; मैं आपके हाथ में हूँ। क्यों आया था, इसके पूछने की ज़रूरत नहीं--पूछने पर भी कोई जवाब नहीं मिलेगा।

नव्वाब गुस्से में आकर हँसे। कहा, "समझे, तुम निडर हो, क्या सच बयान कर सकोगे?"

फ०—अँगरेज़ कभी झूठ नहीं कहता।

न०—अच्छा! देखा जाता है। किसने कहा था कि चन्द्रशेखर हाज़िर हैं? हों तो उन्हें ले आओ।

महम्मद इरफान चन्द्रशेखर को ले आये। चन्द्रशेखर की तरफ़ देखकर नव्वाब ने फ़स्टर से पूछा, "इन्हें पहचानते हो?"

फ़०—नाम सुना है, पहचानता नहीं।

न०—अच्छा है, बाँदी कुलसूम कहाँ है?

कुलसूम भी आई। नव्वाब ने फस्टर से पूछा, "इस बाँदी को पहचानते हो?"

फ०—पहचानता हूँ।

न०—यह कौन है?

फ़०—आपकी बाँदी।

न०—महम्मद तक़ी को ले आओ।

तब महम्मद इरफान ने तक़ी को बँधा हुआ लाकर हाज़िर किया।

तक़ी खाँ अब तक इधर-उधर कर रहे थे। किस तरफ़ जाऊँ। इसी लिए आज भी दुश्मनों से नही मिल सके। परन्तु उन्हें अविश्वासी जानकर नव्वाब के सेनापतियों ने उन्हें निगाह पर रक्खा था। अली इब्राहीम खाँ सहज ही उन्हें बाँध लाये थे।

तक़ी को तरफ़ देखे बिना नव्वाब ने कहा, "कुलसूम, बतला, तू मुङ्गेर से किस तरह कलकत्ता गई?"

कुलसूम ने शुरू से आख़िर तक कुल वैसा ही कहा। दलनी बेगम का कुल वृत्तान्त कहा। कहकर हाथ जोड़कर, आँसू भरकर ऊँचे स्वर से कहने लगी, "जहाँपनाह! दरबारेआम में बेगम की जान लेनेवाले दोज़ख़ के कीड़े इस महम्मद तक़ी के खिलाफ़ मेरा

दावा है। उसने मेरी मालिका के नाम झूठा इलज़ाम लगाया, जहाँपनाह को धोखा दिया, दुनिया की लामिसाल औरत दलनी बेगम को चींटी की तरह कुचलकर मार डाला! जहाँपनाह, इस दोज़ख़ के कीड़े को वैसे ही मसल दीजिए जैसे चींटी को।"

रुँधे गले से महम्मद तक़ी ने कहा, झूठ बात है। तुम्हारा गवाह कौन है?"

आँखें फाडकर कुलसूम गरजी, कहा, "मेरा गवाह? ऊपर निगाह उठाकर देख, मेरा गवाह ख़ुदा है। अपनी छाती पर हाथ रख—मेरा गवाह तू है। अगर और किसी की गवाही ज़रूरी हो तो इस फिरङ्गी से पूछ।"

नव्वाब ने पूछा, "क्यों फिरङ्गी, यह बाँदी जो कुछ कह रही है, सच है? अमियट् के साथ तो तुम भी थे—अँगरेज़ सच ही बोलता है।"

फ़स्टर जो कुछ जानता था, उसने कहा। इससे सबकी समझ में आया कि दलनी अनिन्दनीया थी। तक़ी सर झुकाये खड़ा रहा।

तब चन्द्रशेखर कुछ आगे बढ़कर बोले, "धर्मावतार! बाँदी की बात सच है, इसका एक गवाह मैं भी हूँ। मैं ही वह ब्रह्मचारी हूँ।"

तब कुलसूम ने पहचाना। कहा, "यही हैं।" तब चन्द्रशेखर कहने लगे, "राजन्, यदि यह फिरङ्गी सत्यवादी है तो इससे दो-एक प्रश्न और करना चाहता हूँ।"

नव्वाब समझे, कहा, "तुम पूछो, दोभाषिया समझा देगा।"

चन्द्रशेखर ने पूछा, "तुमने कहा है, तुमने चन्द्रशेखर नाम सुना है; मैं ही वह चन्द्रशेखर हूँ। तुमने उसकी—"

चन्द्रशेखर की बात समाप्त होने से पहले फ़स्टर ने कहा, "आप कष्ट न करें। मैं स्वाधीन हूँ—मैं मरने से नहीं डरता।

यहाँ किसी प्रश्न का जवाब देना-न देना मेरी इच्छा पर है, मैं आपके किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दूँगा।"

नव्वाब ने आज्ञा दी, "तो शैवलिनी को ले आओ।"

शैवलिनी ले आई गई। फ़स्टर पहले शैवलिनी को पहचान नहीं सका—शैवलिनी रुग्णा, शीर्णा, मलिना, जीर्ण-संकीर्ण-वास-परिहिता, अरञ्जित-कुन्तला, धूलिधूसरा थी। देह में छूही लगी, सर पर धूल चढ़ी, बाल बिखरे, मुँह में पगली की हँसी, आँखों में पागल की प्रश्नसूचक दृष्टि। फ़स्टर काँपा।

नव्वाब ने पूछा, "इसे पहचानते हो?"

फ़०—पहचानता हूँ।

न०—यह कौन है?

फ़०—शैवलिनी—चन्द्रशेखर की स्त्री।

न०—तुमने किस तरह पहचाना?

फ़०—आपके अभिप्राय से। जो दण्ड हो, आप आज्ञा दीजिए। मैं जवाब नहीं दूँगा।

न०—हमारे अभिप्राय से, कुत्तों से नुचवाकर तुम्हारी जान ली जानी चाहिए।

फ़स्टर का मुँह सूख गया। हाथ-पैर काँपने लगे। कुछ देर बाद अपने आप धैर्य मिला। उसने कहा, "मेरी मौत ही अगर आपका फ़ैसला है तो दूसरी तरह की मौत के लिए हुक्म दीजिए।"

न०—नहीं। इस मुल्क में एक पुरानी सज़ा की बात लोग कहते हैं। मुजरिम को कमर तक मिट्टी में गाड़ देते हैं, इसके बाद उसे सिखलाये कुत्तों से कटाते हैं। कुत्ता काटने पर घाव पर नमक छिड़कते हैं। कुत्ते मांस से पेट भरकर चले जाते हैं, अधखाया मुजरिम अधमरा गड़ा रहता है। कुत्तों को भूख लगने पर वे फिर आते और बाकी मांस नोच नोच कर खाते हैं। तुम्हारे और तक़ी खाँ के लिये ऐसी ही मौत का हुक्म सुनाया गया।

बँधा हुआ तकी खाँ आर्त पशु की तरह विकट चीत्कार कर उठा। फ़स्टर ज़मीन पर घुटने टेककर हाथ जोड़कर निगाह उठाये हुए ईश्वर को पुकारने लगा। मन-ही-मन कहने लगा, "मैंने तुम्हें कभी नहीं पुकारा, कभी तुम्हें नहीं सोचा, सदा पाप ही किया है। तुम हो, यह कभी मन में नहीं आया। परन्तु आज असहाय होने के कारण तुम्हें पुकार रहा हूँ। हे निरुपाय के उपाय! अगति के गति! मेरी रक्षा करो।"

कोई आश्चर्य में न आयें। जो ईश्वर को नहीं मानता, वह भी विपत्ति में पड़ने पर उन्हें पुकारता है—भक्तिभाव से पुकारता है। फ़स्टर ने भी पुकारा।

आँखें झुकाते ही फ़स्टर की निगाह तम्बू के बाहर गई। एकाएक देखा, एक जटाजूटधारी, रक्ताम्बर पहने हुए, सफ़ेद दाढ़ी-वाले, बदन में राख मले हुए पुरुष खड़े उसकी तरफ़ देख रहे हैं। फ़स्टर उन आँखों की तरफ़ स्थिर दृष्टि से देखता रहा—क्रमशः उसका चित्त दृष्टि के वशीभूत हो गया। क्रमशः उसने आँखें झुका लीं—गहरी नींद में—जैसे उसकी देह विवश हो आने लगी। मालूम होने लगा, जैसे उस जटाजूटधारी पुरुष के होंठ काँप रहे हैं—वे जैसे कुछ कह रहे हैं। क्रमशः सजल-जलद-गम्भीर कंठध्वनि जैसे उसके कानों में गई। फ़स्टर ने सुना, जैसे कोई कह रहा है, "मैं तुझे कुत्तोंवाले दण्ड से बचाऊँगा। मेरी बात का उत्तर दे! क्या तू शैवलिनी का जार है?"

फ़स्टर ने एक बार उस धूल-धूसरित उन्मादिनी की तरफ़ देखा, कहा, "नहीं।"

सब लोगों ने सुना, "नहीं। मैं शैवलिनी का जार नहीं।" उसी वज्रगम्भीर शब्द से फिर प्रश्न हुआ। नव्वाब ने प्रश्न किया, क्यों चन्द्रशेखर, किसने क्या किया? फ़स्टर समझ नहीं सका, उसने केवल सुना, "तो शैवलिनी तुम्हारी नाव पर क्यों थी?"

फ़स्टर ऊँचे स्वर से कहने लगा, "मैंने शैवलिनी के रूप से मुग्ध होकर, उसे घर से निकाला था ! अपनी नाव पर रक्खा था। मन में सोचा था कि वह मुझ पर आसक्त है। परन्तु देखा, वैसी बात नहीं, वह मेरी शत्रु है। नाव पर पहली मुलाक़ात के समय ही उसने छुरी निकाल कर मुझसे कहा, "तुम अगर मेरे कमरे में आओगे, तो इस छुरी से दोनों मरेंगे। मैं तुम्हारी माँ जैसी हूँ।" मैं उसके पास नहीं जा सका, कभी उसे छुआ नहीं।" सबने यह बात सुनी।

चन्द्रशेखर ने पूछा, "इस शैवलिनी को तुमने किस तरह अपना खाना खिलाया ?"

कुण्ठित होकर फ़स्टर ने कहा, "एक दिन के लिए भी उसने मेरा या मेरा छुआ हुआ अन्न नहीं खाया। वह अपने हाथ पकाती थी।"

चन्द्र०—क्या पकाती थी ?

फस्टर—सिर्फ़ चावल—अन्न के साथ दूध के सिवा और कुछ नहीं खाती थी।

चन्द्र०—पानी ?

फ़०—गंगा से आप भरती थी।

ऐसे समय एकाएक आवाज़ हुई—"धड़ाम् धड़ाम् धम् धम्।"

नव्वाब ने पूछा, "यह क्या है ?"

इरफान ने व्याकुल स्वर से कहा, "और क्या है ?—अँगरेज़ों की तोपें हैं। उन लोगों ने पड़ाव पर गोलाबारी शुरू की है।"

एकाएक तम्बू से लोग एक दूसरे को ढकेल कर निकलने लगे। "धड़ाम् धड़ाम् धम्" फिर तोपें गरजने लगीं। फिर! बहुत-सी तोपें एक साथ गरजने लगीं—भयानक नाद एक एक उछाल से पास आने लगा। लड़ाई के बाजे बजने लगे, चारों ओर से तुमुल कोलाहल उठने लगा। घोड़ों की टापों की आवाज़, हथियारों की खटक, सेना की जयध्वनि, समुद्र की तरंगों की तरह गरजने लगी। धुएँ से

आकाश प्रच्छन्न और दिगन्त व्याप्त हो गया। सुषुप्तिकाल में जैसे जलोच्छ्वासों से उमड़कर क्षुब्ध समुद्र ने आकर घेर लिया।

सहसा नव्वाब के अमात्यवर्ग और नौकर रेलराल कर तम्बू के बाहर गये—कोई लड़ाई की तरफ़, कोई भगने के लिए। कुलसूम, चन्द्रशेखर, शैवलिनी और फ़स्टर ये भी बाहर निकले। तम्बू में अकेले नव्वाब और क़ैदी तक़ी बैठे रहे।

इसी समय तोप के गोले तम्बू पर आकर गिरने लगे, नव्वाब ने इसी समय म्यान से अपनी तलवार निकालकर अपने हाथ से तक़ी की छाती के पार कर दी। तक़ी तड़प कर मर गया। नव्वाब तम्बू के बाहर निकले।

आठवाँ परिच्छेद

युद्धक्षेत्र में

शैवलिनी को लेकर बाहर आकर चन्द्रशेखर ने देखा, रमानन्द स्वामी खड़े हैं। स्वामी ने कहा, "चन्द्रशेखर, इसके बाद क्या करोगे?"

चन्द्रशखर ने कहा, "इस समय शैवलिनी की जान किस तरह बचाऊँ? चारों तरफ़ गोले गिर रहे हैं। धुएँ से चारों ओर अँधेरा है—कहा जाऊँगा?"

रमानन्द स्वामी ने कहा, "चिन्ता नहीं—देखते नहीं हो किस तरफ़ यवन-सेना भग रही है? जहाँ लड़ाई शुरू होते ही भगदड़ है, वहाँ जंग फतह होने की कौन-सी सम्भावना है? ये अँगरेज़ बड़े भाग्यवान्, बलवान् और कौशली हैं देख रहा हूँ—जान पड़ता है, ये लोग एक दिन सारा भारतवर्ष हस्तगत करेंगे। चलो, हम

लोग भगते हुए यवनों के पीछे लगें, तुम्हें मेरे लिए नहीं, इस वधू के लिए चिन्ता होनी चाहिए।"

तीनों आदमी भगती हुई यवन-सेना के पीछे लगे। अकस्मात् देखा, सामने अस्त्रधारी सुसज्जित हिन्दू-सेना का एक दल है—रण-मद से मतवाला होकर, दृढ़ता से, पहाड़ की तलहटी से निकलकर अँगरेज़ों का सामना करने के लिए जा रहा है; बीच में उनका नायक घोड़े पर सवार है। देखकर सबने पहचाना, वह प्रताप है। चन्द्रशेखर प्रताप को देखकर अन्यमनस्क हुए। कुछ देर बाद वैसे ही अनमने रहकर कहा, "प्रताप, इस दुर्जय रण मे तुम क्यों ? लौटो।"

"मै आप लोगों की ही खोज में आ रहा था। चलिए, आप लोगों को निर्विघ्न स्थान में रख आऊँ।" यह कहकर प्रताप तीनों आदमियों को अपनी छोटी-सी सेना के बीच मे लेकर लौटे।

वे पर्वतमाला के भीतर की निकलनेवाली कुल राहें जानते थे। जल्द उन्हें लड़ाई के क्षेत्र से दूर ले गये। जाने के समय, दरबार में जो कुछ हुआ था, चन्द्रशेखर ने प्रताप से कहा, फिर कहा, "प्रताप, तुम धन्य हो, तुम जैसा समझते हो, मै भी वैसा ही समझता हूँ।"

प्रताप विस्मित होकर चन्द्रशेखर के मुँह की ओर देखते रह गये।

चन्द्रशेखर का गला भर गया। गद्गद स्वर से उन्होंने कहा, "अब मैं समझा, ये निष्पाप हैं। अगर लोकरञ्जन के लिए कोई प्रायश्चित्त करना हो, तो वह करूँगा। करके इन्हें ग्रहण करूँगा। परन्तु सुख अब मेरे भाग्य में नहीं।"

प्र०—क्यों ? स्वामी जी की दवा से कोई फल नही हुआ ?

च०—अब तक नहीं।

प्रताप का चेहरा उतर गया। उनकी आँखो में आँसू आ गये। शैवलिनी घूँघट से यह देख रही थी--कुछ हटकर हाथ के इशारे से प्रताप को बुलाया। प्रताप घोड़े से उतर कर उसके पास गये। शैवलिनी ने दूसरे से न सुने जानेवाले स्वर मे प्रताप से कहा, "मेरी एक बात कान में सुनोगे ? मै बुरा कुछ नही कहूँगी।"

प्रताप विस्मित हुए, पूछा, "क्या तुम्हारा पागलपन बनावटी है ?"

शै०--इस समय है। आज सुबह बिस्तर से उठने के बाद से कुल बातें समझ रही हूँ। मैं क्या सचमुच ही पागल हो गई थी ?

प्रताप का मुँह खिल गया। शैवलिनी उनके मन की बात समझकर व्यग्रता से बोली, "चुप, इस समय कुछ कहना नही; मै खुद कुल कहूँगी, लेकिन यह तुम्हारी अनुमति से।

प्र०—मेरी अनुमति से क्या ?

शै०—पति यदि मुझे फिर ग्रहण करे, तो मन का पाप छिपाकर उनका प्रणय लेना क्या उचित होगा ?

प्र०--क्या करना चाहती हो ?

शै०--पहले की कुल बाते कहकर क्षमा चाहूँगी।

प्रताप ने सोचा; कहा, "कहना; आशीर्वाद देता हूँ, अब के तुम सुखी होओ।" यह कहकर प्रताप चुपचाप आँसू बहाने लगे।

शै०--मै सुखी नही हूँगी। तुम्हारे रहते मुझे सुख नहीं।

प्र०—यह क्या शैवलिनी ?

शै०—जितने दिन तुम इस पृथ्वी पर रहोगे, मुझसे अब मुलाक़ात न करना। स्त्री का चित्त बिलकुल असार है, कितने दिन वश में रहेगा, नही कह सकती। इस जन्म में तुम मुझसे मुलाक़ात न करना।

प्रताप ने फिर जवाब नही दिया। जल्द घोड़े पर सवार होकर, घोड़े को चाबुक लगाकर लड़ाई के मैदान की ओर बढ़े। उनकी सेना उनके पीछे पीछे दौड़ी।

उनके चलते समय चन्द्रशेखर ने उन्हें बुलाकर पूछा, "कहाँ जाते हो ?"

प्रताप ने कहा, "लड़ाई को।"

व्यग्रभाव से ऊँचे स्वर से चन्द्रशेखर कहने लगे, "जाओ नही, जाओ नही; अँगरेज़ों की लड़ाई में बचना दुश्वार है।"

प्रताप ने कहा, "फ़स्टर अभी तक जीता है, उसके बध के लिए चला।"

तेज़-कदम बढ़कर चन्द्रशेखर ने प्रताप के घोड़े की लगाम पकड़ी। कहा, "फ़स्टर के बध की ज़रूरत क्या है भाई ? जो दुष्ट है, भगवान् उसको दण्ड देगे। तुम और मैं क्या दण्ड के देनेवाले है ? जो अधम है, वही शत्रु से बदला चुकाने की सोचता है, जो उत्तम है, वह शत्रु को क्षमा करता है।"

प्रताप विस्मित, पुलकित हुए। ऐसी महान् उक्ति उन्होंने कभी मनुष्य की ज़बान से नहीं सुनी। ।घोड़े से उतरकर चन्द्रशेखर के पैरों की धूल उन्होंने ली, और कहा, "आप मनुष्यो मे धन्य है; मैं फ़स्टर से नही बोलूँगा।"

यह कहकर प्रताप फिर घोड़े पर सवार हुए और लड़ाई के मैदान की ओर चल दिये। चन्द्रशेखर ने कहा, "प्रताप, तो लड़ाई के मैदान मे क्यो जा रहे हो ?"

प्रताप ने मुँह फेरकर बहुत ही कोमल और बड़ी ही मधुर हँसी हँसकर कहा, "मेरी ज़रूरत है।" यह कहकर घोड़े को चाबुक लगाकर बड़ी द्रुतगति से चले गये।

वह हँसी देखकर रमानन्द स्वामी उद्विग्न हुए। चन्द्रशेखर से कहा, "तुम वधू को लेकर घर जाओ। मैं गङ्गा नहाने जाऊँगा। दो-एक दिन बाद मुलाक़ात होगी।"

चन्द्रशेखर ने कहा, "मैं प्रताप के लिए बहुत चिन्तित हूँ।" रमानन्द स्वामी ने कहा, "हम उसका हाल मालूम करके आ रहे हैं।"

यह कहकर रमानन्द स्वामी चन्द्रशेखर और शैवलिनी को बिदा करके युद्ध-क्षेत्र की तरफ़ चले। उसी धूममय, आहतों के आर्त चीत्कार से भीषण युद्ध-क्षेत्र में, अग्निवृष्टि के भीतर, प्रताप को इधर-उधर अन्वेषण करने लगे। देखा, कहीं शव पर शव पड़े हैं—कोई मर गया है, कोई अधमरा है, किसी का अङ्ग छिन्न है, किसी का वक्ष विद्ध है, कोई 'पानी पानी' की करुण पुकार मचाये है, कोई माता, भ्राता, पिता, बन्धु आदि के नाम पुकार रहा है। रमानन्द स्वामी ने उन शवों में प्रताप की खोज की, नहीं पाया। देखा, कितने अश्वारोही-रुधिराक्त कलेवर से आहत अश्व पर बैठे हुए अस्त्र-शस्त्र डालकर भगे जा रहे हैं, घोड़ों की टापों से कितने अभागे आहत सैनिक कुचले जा रहे हैं। उनमें प्रताप की खोज की, नहीं पाया। देखा, कितने पदातिक ख़ाली हाथ, ऊर्ध्व श्वास से, लहूलुहान हुए भगे जा रहे हैं, उनमें प्रताप की खोज की, नहीं पाया। थककर रमानन्द स्वामी एक पेड़ के नीचे बैठे। वहाँ एक सिपाही भगा जा रहा था। रमानन्द स्वामी ने उससे पूछा, "तुम सब लोग भग रहे हो तो लड़ाई किसने की?"

सिपाही ने कहा, "किसी ने नहीं, केवल एक हिन्दू ने विकट मार की।"

स्वामी ने पूछा, "वह कहाँ है?"

सिपाही ने कहा, "गढ़ के सामने देखिए।" यह कहकर सिपाही भगा।

रमानन्द स्वामी गढ़ की तरफ़ गये। देखा, युद्ध नहीं, कुछ अँगरेज़ों और हिन्दुओं की लाशों का ढेर लगा हुआ है। स्वामी उसमें प्रताप की खोज करने लगे। गिरे हुए हिन्दुओं में किसी ने गहरी कातरोक्ति की। रमानन्द स्वामी ने उसे खींचकर निकाला, देखा, वही प्रताप है! आहत है, मृतप्राय है, परन्तु अभी जीवित है।

रमानन्द स्वामी ने पानी ले आकर उसके मुँह में डाला। प्रताप ने उन्हें पहचान कर प्रणाम के लिए हाथ उठाने की कोशिश की, लेकिन हाथ उठा नहीं सके।

स्वामी ने कहा, "मैं ऐसे ही आशीर्वाद दे रहा हूँ, तुम अच्छे हो जाओ।"

बड़े कष्ट से प्रताप ने कहा, "अच्छा? अच्छे होने मे अब बड़ी देर नहीं। अपने पैरों की धूल मेरे सर पर दीजिए।"

रमानन्द स्वामी ने कहा, "हम लोगो ने मना किया था, क्यो इस दुर्जय युद्ध में आये? क्या तुमने शैवलिनी की बात से ऐसा किया है?"

प्रताप ने कहा, "आप क्यों ऐसी आज्ञा दे रहे हैं?"

स्वामी ने कहा, "जब तुम शैवलिनी से बातचीत कर रहे थे, तब उसके आकार और इङ्गित से मालूम दे रहा था, वह अब पागल नहीं, और जान पड़ता है, तुम्हें बिलकुल भूली नहीं।

प्रताप ने कहा, "शैवलिनी ने कहा था, ऐसा करना कि इस पृथ्वी में मेरे साथ फिर मुलाक़ात न हो। मैं समझा, मेरे जीवित रहते शैवलिनी या चन्द्रशेखर के सुख की सम्भावना नहीं। जो मेरी परम प्रीति के पात्र हैं। जो मेरे परमोपकारी हैं, उनके सुख के कण्टक जैसे इस जीवन की रक्षा उचित नहीं, मैंने सोचा; इसी लिए आप लोगों के मना करने पर भी समर-क्षेत्र में प्राण त्याग करने आया था। मेरे रहने पर शैवलिनी के चित्त के कभी विचलित होने की सम्भावना थी, इसलिए मैं चला।"

रमानन्द स्वामी की आँखों में आँसू आ गये। किसी ने और कभी रमानन्द स्वामी की आँखों में आँसू नहीं देखे। उन्होंने कहा, "इस संसार में तुम्हीं सही सही परहितव्रतधारी हो। हम लोग केवल धर्मध्वजी हैं। तुम परलोक में अनन्त अक्षय स्वर्ग भोग करोगे, सन्देह नहीं।"

कुछ देर चुप रहकर रमानन्द स्वामी कहने लगे, "सुनो, वत्स, मैंने तुम्हारा अन्तःकरण समझा है। ब्रह्माण्ड-जय तुम्हारी इस इन्द्रियजय के बराबर नहीं हो सकती—क्या तुम शैवलिनी को प्यार करते थे ?

सोता हुआ सिंह जैसे जग गया। वही शवाकार प्रताप बलिष्ठ, चञ्चल, उन्मत्तवत् हुङ्कार कर उठा। कहा, "क्या समझोगे तुम, संन्यासी ! इस संसार में मनुष्य कौन है जो मेरा यह प्यार समझेगा ? कौन समझेगा, सोलह साल तक शैवलिनी को मैंने कितना प्यार किया है ? पाप-चित्त से मैं उसकी तरफ़ अनुरक्त नहीं हूँ—मेरे प्यार का नाम जीवन-विसर्जन की आकांक्षा है। नस नस में, खून की एक एक बूँद में, एक एक हाड़ में, मेरा यह अनुराग दिन रात फिरता रहा है। कभी आदमी इसे समझ नहीं सका—आदमी समझ न सकता—इस मृत्यु के समय आपने बात क्यों उठाई ? इस जन्म में, इस अनुराग में मङ्गल नहीं, इसलिए यह देह छोड़ रहा हूँ। मेरा मन कलुषित हुआ है; न जाने, शैवलिनी के हृदय में फिर क्या हो ? मेरी मृत्यु के सिवा इसका दूसरा उपाय नहीं, इसलिए मरा। आपने यह गुप्त तत्त्व सुना—आप ज्ञानी हैं। आप शास्त्रदर्शी हैं, आप ही कहिए, मेरे पाप का क्या प्रायश्चित्त है ? क्या मैं जगदीश्वर के पास दोषी हूँ ? अगर दोष हुआ हो तो इस प्रायश्चित्त से क्या उसका मोचन नहीं होगा ?"

रमानन्द स्वामी ने कहा, "यह मैं नहीं जानता। आदमी का ज्ञान यहाँ असमर्थ है, शास्त्र यहाँ मूक हैं। तुम जिस लोक में जा रहे हो, उस लोकेश्वर के सिवा दूसरे इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे। लेकिन इतना कह सकता हूँ, इन्द्रिय-विजय में यदि पुण्य हो, तो अनन्त स्वर्ग तुम्हारा ही है। यदि चित्त संयम में पुण्य हो तो देवता भी तुम्हारे बराबर पुण्यात्मा नहीं। यदि परोपकार में स्वर्ग हो तो दधीचि से अधिक तुम स्वर्ग के अधिकारी हो। प्रार्थना करता हूँ, दूसरे जन्म में तुम्हारी तरह जैसे इन्द्रिय-जयी होऊँ।"

रमानन्द स्वामी चुप हुए। धीरे धीरे प्रताप के प्राण निकल गये। तृणशय्या पर अनिन्द्य ज्योति स्वर्णतरु पड़ा रहा।

तो जाओ प्रताप, अनन्तधाम में! जाओ जहाँ इन्द्रियजय के लिए कष्ट नहीं, रूप में मोह नहीं, प्रणय में पाप नही, वहीं जाओ। जहाँ रूप अनन्त है, प्रणय अनन्त है, सुख अनन्त है, सुख में पुण्य अनन्त है, वही जाओ! जहाँ दूसरे का दुःख दूसरा समझता है, दूसरे का धर्म दूसरा रखता है, दूसरे की जय दूसरा गाता है, दूसरे के लिए दूसरे को मरना नही पड़ता, उसी महान् ऐश्वर्यवाले लोक में जाओ! लाखों शैवलिनी पैरों तले मिलने पर भी प्यार नही करना चाहोगे।

———